प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

जून 2019

भाकृअनुप
ICAR

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
IARI 1905
जीव – जीवन कृषि

संपादकीय

किसान भाइयो, आप सभी को पावस की हार्दिक बधाई। पावस वर्षा ऋतु को कहते हैं, और कृषि से जुड़े लोगों के लिए इससे पावन और कोई चीज नहीं हो सकती। इस वर्ष कहीं–कहीं सूखे की अटकलें लगाई जा रही थीं, लेकिन वर्षा ने फिलहाल इन अटकलों पर विराम लगा दिया गया, हालाँकि इसकी मात्रा औसत की तुलना में कम या अधिक हो सकती है। असम, बिहार, मुंबई आदि से बाढ़ की खबरें आ रही हैं, लेकिन इसके लिए वर्षा को दोषी ठहराना उचित नहीं है। ईश्वर ने इसे वरदान के रूप में भेजा है, हम अपने लोभ और स्वार्थ में इतने अंधे हो गए हैं, कि इस वरदान को संभाल नहीं पा रहे हैं। यह स्पष्ट तौर पर यह कुप्रबंधन का नतीजा है। वरना ऐसा तो असंभव है कि जो देश चांद पर झंडा गाड़ने जा रहा है, वह प्रतिवर्ष आने वाली बारिश को संभाल सकने में समर्थ न हो।

गत कुछ महीनों से कृषि फिर एक बार चर्चा में आ गई है। कृषि देश के जनमानस से जुड़ी है, लेकिन इसे मीडिया और विमर्श का केंद्र बनना नसीब नहीं हुआ है। गत वर्षों में किसानों की आय दोगुनी करने की चर्चाएँ अवश्य चलती रहीं, लेकिन दिल्ली अभी दूर है। जब इस वर्ष वित्तमंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण ने जब जीरो बजट कृषि को बढ़ावा देने की बात कही, तो यह बात पुनः सुर्खियों में आ गई। जीरो बजट खेती एक अवधारणा है, जो कहती है कि खेती के लिए सभी इनपुट प्रकृति निःशुल्क देती है। सिद्धांततः इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती, कि खेती ही क्या, जीवनयापन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकृति ने सारे संसाधन मुफ्त मुहैया करवाए हैं। यह तो मनुष्य ही है, जिसने अपनी तृष्णा के वशीभूत होकर अपनी जरूरतें बढ़ा ली हैं और कभी औद्योगिक क्रांति, तो कभी हरित क्रांति के नाम पर संसाधनों का कुप्रबंधन और अनुचित दोहन प्रारंभ कर दिया।

भारत में आधुनिक कृषि का इतिहास आजादी के बाद से शुरू होता है, जब देश ने हर प्रकार की परतंत्रता और निर्भरता को तोड़ फेंकने के लिए कमर कस ली थी। प्रति एकड़ जमीन से अधिक से अधिक अन्न उपजाने के लिए नए–नए उपाय, यंत्र इजाद किए गए। शोध और प्रौद्योगिकी विकास का उद्देश्य यही है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, चाहे औद्योगिक हो या कृषि, प्रति इकाई इनपुट से अधिकतम आउटपुट लेने के लिए तौर–तरीकों की खोज की जाए, अधिकतम दक्षता प्राप्त की जाए। कृषि इससे कैसे अछूती रह सकती है? इस प्रक्रिया में संसाधनों का बेहिसाब दोहन होता है, पर्यावरण पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। लेकिन अब वक्त आ गया है कि रणनीति की पुनः समीक्षा की जाए।

अच्छा होगा कि संभलकर एक संतुलित तरीका अख्तियार किया जाए, जिसमें उत्पादन हो, दक्षता बनी रहे, लेकिन कुदरत के तौर–तरीकों का भी सम्मान किया जाए। अब हम उस स्थिति में हैं कि पूर्णतया कुदरती तरीकों पर निर्भर नहीं रह सकते। प्राकृतिक खेती एक सिद्धांत के रूप में स्वीकार्य हो सकती है, पर आधुनिक समय में मुमकिन नहीं है, लेकिन एक संतुलन अवश्य बनाया जा सकता है। तकनीकी आधुनिक हो, साथ ही कुदरत के अनुकूल हो। प्रकृति के तौर–तरीकों को समझा जाए, उसके साथ सामंजस्य बनाया जाए और उसके अनुसार अनुकूलतम उपयोग करने के लिए शोध और विकास किए जाएँ। उदाहरण के लिए, बाढ़ की अधिकांश आपदाएँ इसलिए आई हैं, कि हमने विकास के नाम पर उनके नैसर्गिक मार्ग को अवरुद्ध किया है। हमें समझ लेना चाहिए कि कुदरती शक्तियाँ बड़ी प्रबल होती हैं, उनके विरुद्ध जाना नासमझी है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने हमेशा सुरक्षित कृषि की अनुशंसा की है। अपनी सिफारिशों में रसायनों को शामिल किया है, लेकिन सुरक्षित सीमा और अंतिम हथियार के तौर पर। साथ ही इसके इस्तेमाल से पहले जैविक और भौतिक तरीकों को अपनाने पर जोर दिया है। लेकिन एक उपयोगकर्ता होने के नाते हम इसका अनुशासन भूल गए हैं। अविवेकपूर्ण इस्तेमाल करने लगे हैं, जिसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे हैं। बहरहाल, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने जीरो बजट खेती पर प्रयोग शुरू कर दिया है और उम्मीद है कि हम इसका विश्लेषण कर इसपर आधारित वैज्ञानिक–सम्मत अनुशंसाएँ जारी कर पाएँगे।

एक शिकायत नीति निर्माताओं से भी है। जल, जमीन, पर्यावरण, स्वास्थ्य और ब्रह्मांड को बचाने का पूरा जिम्मा किसानों के सर पर डाल दिया है, मानो सारी मुसीबत की जड़ केवल आधुनिक कृषि है। पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाली अन्य निकायों, जैसे उद्योगों, इलेक्ट्रॉनिक्स, विकिरण, मोटर–गाड़ी, पेट्रोल, कोयला सहित तमाम खनिजों का उत्खनन, औद्योगिक और शहरी कचरों, प्लास्टिक का निपटान, वनों में प्रतिवर्ष अग्निकांड आदि का भी आकलन होना चाहिए। सबकी पर्यावरण ऑडिटिंग की जानी चाहिए और इनकी जवाबदेही तय की जानी चाहिए। एक न्यायपूर्ण प्रबंधन हो और यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यह देश किसी अन्य क्षेत्र में तरक्की से समझौता तो कर सकता है, लेकिन कृषि से नहीं।

समय की प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए प्रसारदूत में विषयों पालीहाउस में संरक्षित सब्जी पौध उत्पादन, ग्रीष्म ऋतु में बागों का प्रबंधन एवं रख रखाव, कीटनाशकों का उपयोग : सावधानियां एवं बचाव, बागवानी फसलों हेतु आधुनिक कृषि उपकरण, मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन, भारत के मृदा, एवं जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव, सोयाबीन की अधिक पैदावार के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियाँ, बाजरे की सफल खेती हेतु आधुनिक सस्य प्रौद्योगिकी एवं नवीन कृषि यंत्र, मिश्रित खेती, अगेती फूलगोभी उत्पादन की उन्नत तकनीक, धान के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन, समन्वित खाद प्रबंधन, मिट्टी की उर्वरता और सतत कृषि, धान की फसल में जस्ते का महत्व व प्रबंधन पर आलेख शामिल किए गए हैं। यह अंक आपको कैसा लगा, पत्र द्वारा अवश्य सूचित करें।

(संपादक)

जून 2019

प्रसार दूत

वर्ष 24 2019 अंक-2

संरक्षक

डॉ. ए.के. सिंह

कार्यवाहक निदेशक

डॉ. जे.पी. शर्मा

संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक

डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक

डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल

डॉ. वाई. वी. सिंह

डॉ. एम. के वर्मा

श्री के. एस. यादव

डॉ. हरीश कुमार

श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग

श्री राजेश कुमार

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

नई दिल्ली–110012

फोनः 011–25841039

पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)

ई–मेलः incharge_atic@iari.res.in

वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1 पालीहाउस में संरक्षित सब्जी पौध उत्पादन 1

2. ग्रीष्म ऋतु में बागों का प्रबंधन एवं रख रखाव 4

3. कीटनाशकों का उपयोग : सावधानियां एवं बचाव 7

4. बागवानी फसलों हेतु आधुनिक कृषि उपकरण 9

5. मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन 14

6. भारत के मृदा एवं जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव 19

7. सोयाबीन की अधिक पैदावार के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियाँ 25

8. बाजरे की सफल खेती हेतु आधुनिक सस्य प्रौद्योगिकी एवं नवीन कृषि यंत्र 31

9. मिश्रित खेती 35

10. अगेती फूलगोभी उत्पादन की उन्नत तकनीक 38

11. धान के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन 43

12. समन्वित खाद प्रबंधन, मिट्टी की उर्वरता और सतत कृषि 48

13. धान की फसल में जस्ते का महत्व व प्रबंधन 51

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा

एक प्रति मूल्य ₹ 20/–

पालीहाउस में संरक्षित सब्जी पौध उत्पादन

पी. के. सिंह एवं नीलम पटेल

संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केन्द्र, भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

उच्च गुणवक्ता युक्त सब्जी उत्पादन या सब्जी बीज उत्पादन करने के लिए यह अति आवश्यक है कि पौधे स्वस्थ, ओजस्वी एवं बिमारी मुक्त हो। सब्जी पौध बहुत सारी बीमारियों मुख्यतः विषाणु जनित बीमारियों के प्रति संवेदनशील होती हैं। क्योंकि यह पौधे नाजुक, रसभरे तथा बहुत ही नर्म कोमल होते हैं जिनमें विषाणु वाहक कीट जल्दी विषाणुओं को प्रसारित कर देते हैं। दूसरी तरफ उच्च गुणवक्ता वाले सब्जी संकर किस्मों के बीज काफी महंगे होते है। अतः यह अति आवश्यक हो जाता है कि सब्जी बीज उत्पादक, सब्जी पौध को संरक्षित अवस्था में उगायें ताकि हर एक बहुमूल्य बीज से स्वस्थ बीमारी रहित पौधा प्राप्त हो क्योंकि वह बीज मुक्त परागित प्रजातियों की अपेक्षा 25–50 गुना अधिक मूल्य में प्राप्त होता है। इसलिये यह आवश्यक है कि सब्जी पौध उत्पादन उचित दशाओं में किया जाये।

आजकल तकनीकि प्रगति एवं कम कीमत पर उच्च गुणवक्तायुक्त रोपण सामग्री की वजह से पौध उत्पादन ने एक व्यवसाय का रुप ले लिया है। प्लास्टिक की बहुकोषीय ट्रे की उपलब्धता जिनके हर खाने का अपना आकार होता है, तथा कृत्रिम मृदारहित माध्यम ने हर पौधे की बढवार दर पर नियंत्रण रखना संभव कर दिया है। ट्रे में कोषिका (खाने) का आकार एवं पौध उगाने हेतु मृदा रहित माध्यम जड़ की बढवार तथा नियंत्रित आवश्यक पानी एवं पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने हेतु भी उचित होता है।

सब्जी पौध को अत्याधुनिक पौधशाला में उगाने के अनेक फायदे हैं जैसे (1) पूर्णतया विषाणु मुक्त पौध उगाने की संभावना (2) मृदाजनित बीमारियों एवं सूत्रकृमि की समस्या न होना (3) बेमौसमी पौध उत्पादन की संभावना (4) कम बीज की आवश्यकता (5) सभी कददू वर्गीय फसलों की पौध उत्पादन संभव जो कि परांम्परागत ढ़ग से सम्भव नहीं। (6) पौध में अच्छी जड़ बढ़वार (7) कोई मृत्युदर नहीं (8) पौधे में रोपण झटका नहीं लगता एवं मुख्य खेत में शीध्र स्थापित होते हैं। (9) छोटे संरक्षित क्षेत्र में ज्यादा पौध उत्पादन (10) आसान देखभाल एवं दूरस्थ स्थानों पर ले जाने में सुगम, इसे एक छोटे व्यवसाय के रुप में लिया जा सकता।

सब्जी पौध उत्पादन की आवश्यकता

सब्जी पौध उत्पादन, छोटे तथा महगें बीजों से कम जगह में सुगम तरीके से नाजुक युवा पौधों को अच्छे ढंग से पौध उत्पादन का उपाय है।

सामान्यतया सब्जी फसलों को रोपण सुविधा के हिसाब से तीन समूहों मे बांटा गया है। चुकन्दर, ब्रोकोली, ब्रुसेल्स स्प्राउट, पत्ता गोभी, फूल गोभी, टमाटर, तथा लेट्टूस फसलें प्रभावी तरीके से पानी को अवशोषित करती हैं तथा रोपण के बाद आसानी से नई जड़ें बना लेती हैं। सब्जी फसलें जो सामान्यतया आसानी से रोपित हो जाती हैं जैसे बैंगन, प्याज, शिमला मिर्च तथा सेलेरी, जो कि उस तरीके से जल अवशोषित नहीं करती जितनी आसानी से रोपित हो जाती हैं लेकिन यह फसलें सामान्यता नई जड़ें जल्दी बनाती हैं। वह सब्जी फसलें जिनको रोपित करना कठिन है जैसे कद्दू वर्गीय सब्जियां, स्वीटकार्न, जिनका पौध उत्पादन एवं रोपण में विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

तैयार पौध सिर्फ फसल अवधि ही कम नहीं करती बल्कि फसल की एकरुपता को भी बढ़ाती है। पौधा रोपण के बाद बीच में से पौधे नहीं निकलने पड़ते तथा विषाणु रहित, ओजस्वी तथा बेमौसम पौध उत्पादन की सम्भावनायें भी प्रदान करता है। अतः इस तरह से सफल पौध उत्पादन हेतु संरक्षित संरचनाओं के बारे में जानकारी देना अति आवश्यक है इसके साथ उचित प्रकार के कंटेनर और

पौधे उगाने हेतु माध्यम, मृदा रहित माध्यम में बीज बोने का तरीका, पौधा को पानी व खाद की आवश्यकता, पौधा दृढीकरण या कठोरन तथा पौध की मुख्य खेत में उगाने की दशा आदि के बारे में भी जानकरी अति आवश्यक है। संरक्षित सब्जी पौध उत्पादन तकनीक बहुत ही विशेषज्ञता वाला कार्य है। जिसे शहरों के आस–पास के क्षेत्रों में छोटे उद्योग के रुप में बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

संरक्षित सब्जी पौध उत्पादन ग्रामीण युवाओं एवं अन्य लोगों को रोजगार ही नहीं देता परन्तु यह तकनीक विषाणु रहित, स्वस्थ, ओजस्वी बेमौसमी पौध को भी समय पर किसानों हेतु उपलब्धता सुनिश्चित करती है।

संरक्षित सब्जी उत्पादन हेतु कुछ संसाधनों की आवश्यकता होती हैं जो कि निम्न प्रकार हैं –

प्लग–ट्रे या प्रो–ट्रे

पौध उत्पादन विभिन्न प्रकार के बर्तनों में किया जा सकता है परन्तु स्टायरोफोम या प्लस्टिक ट्रे को दुनिया के विभिन्न भागों में एक स्तर का माना जाता है।

एक समान आकार की ट्रे जिसमें एक ही आकार प्रकार के कोष होते हैं। उन्हें स्टायरोफोम में स्थापित कर दिया जाता है, को अधिक अच्छा माना जाता है क्योंकि इसमें जड़ क्षेत्र में समान तापमान तथा नमी रहती है।

प्रो–ट्रे के कोष/सेल विभिन्न आकार प्रकार के भी हो सकते हैं जैसे पिरामिड आकार गोला या शष्टकोणिय जिन्हें विभिन्न फसलों हेतु प्रयोग किया जाता है। परन्तु समान्यतया इस उद्योग में एक इंच आकार वाले या दो सौ पौधे प्रति प्लास्टिक प्रो–ट्रे को ही प्रयोग में लाया जाता है। प्रो–ट्रे का चयन पौधे के नर्सरी में रखने के समय अवधि, पौधे उगाने में अर्थिक नफा नुकसान आदि पर भी निर्भर करता है। सब्जी पौधे उगाने में प्रयोग की जाने वाली ट्रे में जल निकासी, मृदा रहित माध्यम को संभालने तथा रखरखाव में आसानी आदि विशेषतायें होनी चाहिए।

विभिन्न स्थानों पर सब्जी पौध उत्पादन हेतु 1.0 इंच तथा 1.5 इंच आकार की कोष वाली ट्रे प्रयोग की जाती है। कोष का आकार फसल के प्रकार पर निर्भर करता है। जैसे खीरा, खरबूजा, टमाटर और बैंगन की पौधे 187 कोष/छेद वाली ट्रे जिसमें कोष या छेद का आकार 1.5 इंच का होता है। जबकि सलाद पत्ता, पत्ता गोभी, फूल गोभी, मिर्च आदि हेतु 345 छेद वाली ट्रे जिसमें कोष/छेद का आकार 1.0 इंच होता है प्रयोग की जाती है।

पौधा उगाने हेतु मृदा रहित माध्यमः मुख्यतः संरक्षित वातावरण में पौधा उगाने हेतु मृदा रहित माध्यम का प्रयोग किया जाता है। जिसमें मुख्यतः तीन अवयव होते है :–

1. कोको पीट
2. वर्मीकुलाइट
3. परलाइट

इन तीनों का नर्सरी तैयार करने हेतु माध्यम के रुप में प्रयोग किया जाता है।

इन अवयवों को 3:1:1 (भार अनुसार) अनुपात में मिलाकर पौध उगाने वाले बर्तनों या प्रो–ट्रे में भरा जाता है। जिस माध्यम में बड़े आकार के लंबे रेशों वाले कण होते हैं वह कोको पीट बेहतर हवा का संवाहन एवं जल निकासी वाला होता है जिससे पौध में बेहतर जड़ विकास होता है।

इन अवयवों की प्रमुख विशेषताये निम्न लिखित है –

कोको पीट : इसे नारियल के रेशे वाले कवच / के चूरे से बनाते हैं इसमें अच्छी जल निकासी तथा हवा का आसानी से आवागमन होता है। यह पूरी तरह से रोग एवं बीमारी मुक्त होता है।

परलाइट : यह एक हल्का ज्वालामुखी से उत्पन्न चट्टानी पदार्थ है इसे अति उच्च तापमान पर गर्म करके सफेद दानेदार रुप में बनाया जाता है। परलाइट उदासीन प्रतिक्रिया वाला होता है तथा मिश्रण में लगभग न के बराबर पोषक तत्व प्रदान करता है।

वर्मी कुलाइट : यह बहुत अधिक तापमान पर गर्म किया हुआ अभ्रक है यह वजन में बहुत हल्का जिसमें मैगनीशियम एवं पोटेशियम होता है जो कि मिश्रण को ताकत देता एवं इसकी जल धारण क्षमता बढ़ाता है यह भी उदासीन प्रतिक्रिया वाला होता है।

मृदा रहित माध्यम के लाभ

सब्जी पौध उत्पादन में प्रयोग होने वाले मृदा रहित माध्यम के निम्नलिखित लाभ है :—

(1) मिश्रण की एक समानता : मृदा रहित माध्यम के मिश्रण की भौतिक एवं रासायनिक गुण सारे मिश्रण में एक समान होता है जो कि मिट्टी में नहीं होता है। मिश्रण की यह समरुपता पौध को समान रुप से उगने बढ़ने में मद्द करती है।

(2) संभालने में आसान : यह मिश्रण वजन में हल्का और लाने ले जाने में आसान होता है सभी अवयव मिश्रण बनाते समय एवं अन्य कार्यों के दौरान आसानी से इधर–उधर हटाये जा सकते हैं।

(3) प्रयोग में सुगमता : यह मिश्रण बने बनाये भी बाजार में उपलब्ध है जिसे सीधे प्रयोग किया जा सकता है।

(4) बहुउद्देश्यता : यह मिश्रण विभिन्न कार्य विशेष हेतु भी प्रयोग किया जा सकता है जैसे गार्डन मिश्रण, फूलों की क्यारियों हेतु, लान में प्रयोग हेतु।

(5) जीवाणु/बीजाणु मुक्त : यह मिश्रण प्रायः कीट एवं बीमारियों से मुक्त होता है अतः पौधगलन जैसी बीमारियाँ कम आती हैं।

इस प्रकार इस मिश्रण का प्रयोग करते हुए विभिन्न प्रकार के सब्जी बीजों की पौध तैयार की जाती है पौध तैयार करने के लिए मिश्रण तैयार कर प्रो–ट्रे में भर दिया जाता है। फिर ट्रे के प्रत्येक कोष/छेद में एक बीज बोया जाता है तथा बाद में बीज के ऊपर वर्मीकुलाइट की एक पतली पर्त डाली जाती है और फिर फव्वारे/हजारे की सहायता से हल्का पानी देते हैं फिर ट्रे को एक के ऊपर एक रख देते है। सर्दी के मौसम में प्रत्येक प्रो–ट्रे को अंकुरण कमरे में रखा जा सकता है। जहां का तापमान 25 डिग्री सेंटीग्रेट रखा जाता है ताकि बीजों का अंकुरण जल्दी व ठीक प्रकार से हो सके।

अंकुरण के बाद सभी ट्रे पालीहाउस या अन्य संरक्षित क्षेत्र में बने प्लेटफार्म या फर्श पर फैलाई जा सकती हैं।

अंकुरित हुए पौधों को समय समय पर पानी एवं खाद फव्वारे/हजारे की मद्द से दिया जाता है। घुलनशील रासानिक उर्वरक नर्सरी ग्रेड को पानी के साथ ही पौधों को देते हैं पौधे की प्रांरभिक अवस्था में यह रासानिक उर्वरक 70 पी.पी.एम. तथा बाद में 140 पी.पी.एम. प्रति सप्ताह की दर से दिया जाता है।

इस प्रकार पौधे तैयार होने में 22–30 दिन (मौसम के अनुसार) लगते हैं। तैयार पौध को माध्यम सहित मुख्य खेत में रोपाई की जाती है। यह पौध पैक करके दूरस्थ स्थानों तक भी भेजी जा सकती है।

इस प्रकार संरक्षित सब्जी पौध उत्पादन तकनीक द्वारा पौध उत्पादित कर अच्छी आय प्राप्त की जा सकती है तथा हमारे शहरी क्षेत्रों के आस–पास के बेरोजगार युवाओं को रोजगार के साथ किसानों को स्वस्थ, कीट एवं बीमारी मुक्त ओजस्वी पौध प्राप्त हो सकती है।

ग्रीष्म ऋतु में बागों का प्रबंधन एवं रख रखाव

मधुबाला ठाकरे, महेंद्र कुमार वर्मा एवं अरविन्द

फल एवं औद्यानिक प्रौद्योगिकी संभाग,

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

फलदार वृक्षों की बागवानी सफलतापूर्वक करने हेतु सम्बंधित ज्ञान के साथ–साथ निपुणता एवं लगन की भी आवश्यकता होती है। ग्रीष्म ऋतु में फलदार पेड़ों में वाष्पोत्सर्जन की क्रिया तेज गति से होती है एवं तापमान अधिक रहने तथा तेज हवाएं चलने की वजह से फल वृक्षों की उचित देखभाल करनी चाहिए। जिससे किसान को पैदावार भी अधिक मिले एवं गुणवत्ता वाले फल पैदा हो तथा मुनाफा बढ़े। फल वृक्षों जैसे आम, अंगूर, किन्नो, अंगूर, अमरुद मुख्य फल हैं जिनकी देखभाल करने के लिए विभिन्न बातों का विशेष ध्यान रखने की जरुरत होती है।

आम

गर्मियों के महीने फल बढ़वार के लिए काफी महत्वपूर्ण होते हैं। गर्मी का मौसम होने के कारण सूखा अधिक रहता है इस कारण पौधों से पानी का वाष्पोत्सर्जन द्वारा ज्यादा नुकसान होता है फलस्वरूप फल छोटे रह जाते हैं एवं जब फलों का आकार मटर के दाने के बराबर होने के समय से ही नियमित रूप से सिंचाई को 10–15 दिन के अन्तराल पर करते रहना चाहिए। गर्मी ऋतु की शुरूआत से ही, आम के फलों का गिरना शुरू हो जाता है। इस समस्या को फल झड़न की समस्या कहते हैं। अतः फल को पौधों पर बनाये रखने के लिए पौधों पर नैप्थेलिक एसीटिक अम्ल (20 पी.पी.एम.) के घोल का छिड़काव करना चाहिए। यह छिड़काव जब फल मटर के दाने के बराबर हो उस अवस्था में करना चाहिए। फलों के झड़ने को रोकने के लिए 2–3 छिड़काव सूक्ष्म तत्वों (जिंक, तांबा, मैंगनीज, लोहा तथा बोरॉन) का 10–12 दिन के अन्तराल पर व जब फल मटर के दाने के बराबर हो करें।

पुष्प कुरूपता रोग से ग्रसित मंजरियों को तेज चाकू की धार से काट कर अलग कर देना चाहिए। कटे हुए भाग को गढ़ढा खोदकर मिट्टी में दबाकर नष्ट कर देना चाहिए। दीमक को भी आम के तनों पर देखा जा सकता है। यदि पौधों पर दिखती है तो तुरन्त 0.2 प्रतिशत (20 मिली / 100 ली. पानी) में क्लोरोपाईरीफोस के घोल को ग्रसित स्थान पर डालें ।

यदि भून्गा कीट (मैंगो हॉपर) का प्रकोप दिखाई देता है तो क्लोरोपाईरीफोस (1 मिली / ली.) या डाईमेथोयेट (0.5 मिली / ली. पानी में) का छिड़काव करना चाहिए।

फल मक्खी आम में लगने वाला सबसे खतरनाक कीड़ा है । इसके प्रकोप से फलों की गुणवत्ता घट जाती है जिससे फलों को बेचने में कठिनाई आती है तथा किसानों की आमदनी घट जाती है। इस कारण से किसानों को सलाह दी जाती है कि इस कीड़े की रोकथाम को समय से पहले कर लेना चाहिए । इसकी रोकथाम करने के लिए बागों में फल मक्खी ट्रैप (मिथाईल यूजीनाल 0.1 प्रतिशत+ मेलाथियान 0.1 प्रतिशत) का उपयोग करना चाहिए। प्रति हेक्टेयर क्षेत्रफल में 15–20 ट्रैप की आवश्यकता होती है।

तना छेदक तथा पत्ती काटने वाला कीड़ा भी इस माह में लगता है। छेदक कीड़ा, तने के भीतर छेद बनाकर अन्दर चला जाता है तथा धीरे–धीरे अन्दर शाखा को खाकर सुखा देता है। पत्ती काटने वाला कीड़ा पत्तियों को काटकर उनमें छोटे–छोटे छिद्र बना देता है जिससे पौधे की बढ़वार पर विपरीत असर पड़ता है। अतः इसकी रोकथाम कार्बारिल (0.2 प्रतिशत) या मोनोक्रोटोफॉस (0.05 प्रतिशत) के घोल के छिड़काव को अप्रैल माह में पौधों पर करते हैं।

आम के फल कार्यिक विकारों जैसे ब्लैक टिप (काला शिरा) तथा अंदरूनी गलन (इंटर्नल नेक्रोसिस) से भी कहीं–कहीं ग्रसित हो जाते हैं। काला शिरा विकार से फल के नीचे वाले भाग पर काले रंग का हिस्सा बन जाता है तथा अंदरूनी गलन से फल के अंदर का भाग गल जाता है। जिन क्षेत्रों में ईंट के भट्टे फल बढ़वार के समय चलते हैं वहाँ यह समस्या अधिक आती है। अतः आम के बागों को ईंट के भट्टों से 1.5 किमी दूर लगाना चाहिए।

पौधों पर बोरेक्स 1 प्रतिशत (1 किग्रा/100 ली. पानी में) के घोल के छिड़काव को अप्रैल के आखिरी सप्ताह में करना चाहिए। अप्रैल माह में बौर झुलसा (ब्लासम ब्लाईट) तथा ऐंन्थ्रेक्नोज का प्रकोप भी होता है । इससे फूल झुलस जाते हैं तथा एन्थ्रेक्नोज से मंजरियों, नई शाखाओं तथा फलों पर भी काले रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन 1 किग्रा/100 ली. पानी में) के घोल के छिड़काव से की जा सकती है।

गर्मियों के आखिरी माह का समय आम के फलों की तुड़ाई का होता है। फलों को सही परिपक्वता की अवस्था में ही तोडना चाहिए तथा उन्हें 2–3 सेमी डंठल के साथ तोड़ना चाहिए। इस समय यदि सिंचाई की अत्यधिक आवश्यकता हो तभी सिंचाई करनी चाहिए अन्यथा फलों की मिठास प्रभावित होती है। क्षतिग्रस्त तथा रोगग्रस्त फलों को अलग कर देना चाहिए। विभिन्न प्रजातियों के फलों की तुड़ाई के पश्चात् उन्हें मिलाना नहीं चाहिए। इससे श्रेणीकरण तथा छटनी करने में कठिनाई आती है। सभी प्रजातियों को अलग–अलग रखने से करने पैकिंग में आसानी रहती है। तुड़ाई के तुरन्त बाद फलों में डीसैपिंग (डण्ठल से निकलने वाले तरल पदार्थ को अलग करना) करनी चाहिए जिससे फलों में लगने वाले धब्बों से बचाया जा सकता है तथा उनकी गुणवत्ता भी अच्छी रहती है। टूटे हुए फलों को प्लास्टिक की टोकरियों (क्रेट) में रखकर पैक हाउस पहुँचाना चाहिए। यहाँ पर फलों का श्रेणीकरण करते हैं। क्षतिग्रस्त कटे–फटे, सड़े तथा खराब फलों को निकल कर बाहर फेंक देना चाहिए। फलों के तुड़ाई के तुरन्त बाद छायादार तथा ठण्डे स्थान पर एकत्र करते हैं जिससे फलों में उपस्थित गर्मी को निकाला जा सके तथा उनकी गुणवत्ता अच्छी बनी रहती है। इसके पश्चात् फलों को धोकर सुखाते हैं एवं भण्डारण के लिए भेज देना चाहिए। फलों को समान रूप से पकाने के लिए इथ्रेल के घोल (750 पीपीएम) में 5 मिनट तक डुबोना चाहिए। इस घोल के साथ कार्बेन्डाजिम (0.5 ग्राम/ली0) को भी मिला देना चाहिए । इससे तुड़ाई उपरांत फलों की बीमारियों से बचाया जा सकता है ।

अमरुद

अमरुद में अप्रैल के आखिरी के 10 से 15 दिनों तथा मई माह के शुरू के 10 से 15 दिनों के दौरान फूल तथा फल बनते हैं यह फल वर्षा ऋतु में पकते हैं। इसलिए ऐसे किसान भाई जिन्हें वर्षा ऋतु में अमरूद नहीं चाहिये, इस समय बहार नियंत्रण का कार्य कर सकते हैं। ऐसे क्षेत्र जहाँ वातावरण में आद्रता होती है (ग्रीष्म ऋतु शुष्क नहीं होती) वहां पर प्रूनिंग के द्वारा बहार नियंत्रण का कार्य किया जा सकता है। अमरुद में बहार नियंत्रण के जोड़ा पत्ती कृन्तन से किया जा सकता है। इसमें ऐसी शाखाएँ जिनमें कलियाँ या फल लगे हों को आधार में एक जोडा पत्ती छोड़कर ऊपर के भाग को काट दिया जाता हैं। अमरुद में नई शाखाएँ हल्के हरे रंग की तथा पुरानी शाखाएँ गहरे भूरे रंग की होती हैं। इस विधि का लाभ यह है की इसमें वर्षा ऋतु की फसल कम हो जाती है पर कुछ फल मिल जाते हैं। चूँकि प्रत्येक वृक्ष पर फलों की संख्या कम होती है इसलिए पर्याप्त पोषण मिलने से उनका आकार और गुणवत्ता भी अच्छी होती है। इसके अलावा इस विधि से वृक्षों के फैलाव में भी कमी आती है। जिससे बाग जल्दी घने नहीं होते हैं। यदि किसान वर्षा ऋतु की फसल लेना चाहते हैं तो उन्हें पूरी ग्रीष्म ऋतु में बाग की देखभाल करनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है सिंचाई व किसान भाइयों को ड्रिप सिंचाई प्रणाली का प्रयोग करना चाहिए। यदि किसान भाई नाली विधि से सिंचाई कर रहे हैं तो वृक्षों की दो लाइनों के बीच एक नाली बनाकर दोनों तरफ के वृक्षों के थालों को छोटी नाली की सहायता से जोड़ें और समय समय पर सिंचाई करते रहें। वर्षा ऋतु के अंतिम सप्ताह में इमिडाक्लोप्रिड 3 मिली प्रति 10 लीटर पानी की दर से छिड़काव कर सकते हैं। इसके साथ ही मिथाइल यूजीनॉल का ट्रैप भी लगाना चाहिए इससे वर्षा ऋतु में फल मक्खी के प्रकोप से बचा जा सकता है।

अंगूर

अंगूर के दानों का आकार बड़ा एवं लंबा करने के लिए जिब्रेलिक अम्ल के 20 तथा 40 पीपीएम घोल को 3–4 मिली. मी. आकार के दानों पर छिड़काव करें। अप्रैल तथा मई माह में पोटेशियम सल्फेट (200 ग्राम/बेल) देना चाहिए। सूक्ष्म तत्वों जैसे जिंक तथा लोहा (0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव करें। दस से बारह दिन के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। जब दानों में रंग बदलना शुरू हो तो इथ्रेल का छिड़काव करने से अंगूर जल्दी पक कर तैयार हो जाते हैं। अंगूर एक नॉन–क्लाईमैक्ट्रिक फल है। अर्थात यह फल तोड़ने के बाद नहीं पकता। अतः सही अवस्था में ही फलों की तुड़ाई करें। जून के प्रथम सप्ताह

में जब मिठास 18 डिग्री ब्रिक्स हो तो तुड़ाई करें। उत्तर भारत में अंगूर की ज्यादातर किस्में जून के पहले, दूसरे एवं तीसरे सप्ताह में तैयार हो जाती हैं।

पपीता

पपीते में समय समय पर सिंचाई करते रहें। सिंचाई करते समय पानी सीधे तने के संपर्क में नहीं आना चाहिए। इसलिए तने के आस पास की मिट्टी ऊँची रखनी चाहिए यदि फल पक रहे हैं तो पक्षियों से फलों की रक्षा करें एवं फलों की समय समय पर तुड़ाई करते रहें। द्विलिंगी किस्मों के पौधों को एक ही गड्ढे में 20–25 सेमी. के फासले पर दो पौधे प्रति गड्ढा लगा देते हैं। उभयलिंगी किस्मों के लिए एक पौधा ही एक गडढे में लगाना चाहिए। उत्तर भारत में सप्ताह में दो बार तथा जाड़े में 15 दिन के अंतर पर सिंचाई करनी चाहिए। थालों के चारों तरफ हल्की गुड़ाई अवश्य करनी चाहिए। पपीते के एक पौधे को वर्षभर में 250 ग्राम नत्रजन, 300 ग्राम फॉस्फोरस एवं 400 ग्राम पोटाश देना चाहिए। इसे 6 बराबर भागों में बांटकर प्रति 2 माह के अंतराल से देते हैं। थालों के चारों तरफ हल्की गुड़ाई अवश्य करनी चाहिए। सूक्ष्म पोषक तत्वों के घोल को 2.5 मिली. मात्रा को 1 लीटर पानी में मिला कर फूल आने के समय पौधों पर छिड़काव करना चाहिए ।

नीबू वर्गीय फल

ग्रीष्म ऋतु में किन्नों में फल बन चुके होते हैं अतः समय–समय पर पर्याप्त सिंचाई करते रहें। अन्यथा फल झड़न की समस्या हो सकती है।

नींबू वर्गीय फलों में सिट्रस सायला, सफेद मक्खी तथा लीफ माइनर के प्रकोप होने पर इमिडाक्लोप्रिड (3 मि.ली./10 लिटर पानी) का छिड़काव करें। माईट्स की रोकथाम के लिए फेनाजाक्वीन (2 मिली/10लिटर पानी) में घोल बना कर छिड़काव करें।

जून के आखिरी सप्ताह में बोर्डो पेस्ट को मुख्य तने के चारों तरफ लगाएं, तना छेदक कीट की रोकथाम के लिए तने में उपस्थित छिद्रों में केरोसीन या पेट्रोल से भीगी रूई से बंद कर देना चाहिए, जड़ गलन फायटोफ्थोरा से संक्रमित पेड़ों के इलाज के लिए रिडोमिल (2.5 ग्राम/लीटर पानी में) के घोल को बना कर पेड़ के तने को चारो तरफ से तर करें, यदि मिली बग का आक्रमण हो तो कार्बोसल्फान (5 मिली/10 लीटर पानी में) छिड़काव करें।

मानसून की बारिश आने से पहले पेड़ों में कॉट–छांट करें तथा रोग ग्रस्त टहनियों को निकालकर बोर्डो पेस्ट लगाएं।

इन सब के अलावा कुछ प्रबंधन क्रियायें सभी फलों में सामान्य होती है जैसे की :–

- ग्रीष्म ऋतु में दीमक की समस्या हो सकती है, अतः सिंचाई के पानी के साथ क्लोरोपायरीफॉस मिलानी चाहिए।
- बाग की सीमाओं पर वायुरोधी वृक्षों को लगाना चाहिए। इससे बाग की सूक्ष्म जलवायु बाहर की तुलना से अच्छी होती है तथा बाग का तापमान कम रहता है और आद्रता अधिक रहती है। यदि वायुरोधक पहले से लगा रखे हैं तो उनके बीच की खाली जगह को भरने के लिए नए वृक्ष लगाने चाहिए। किसान भाई मक्का की 3–4 लाइने भी बाग के चारों तरफ लगा सकते हैं। इससे बाग की गर्म हवाओं से रक्षा होगी तथा आपको अतिरिक्त आय होगी। आप केले के पौधे भी लगा सकते हैं तथा क्षेत्र की जलवायु, बाग में लगे फल के प्रकार एवं अपनी आवश्कतानुसार वायुरोधी वृक्षों का चुनाव कर सकते हैं।
- गर्मियों के महीनों में सिंचाई की अति आवश्यकता होती है।
- नये बाग लगाने के लिए तथा रिक्त थालों में पेड़ लगाने के लिए गड्ढों की खुदाई करे।
- इस तरह से गर्मियों के महीनों में बागों की अच्छी तरह से देखभाल की जा सकती है एवं उनसे गुणवत्तापूर्ण फलों की अच्छी पैदावार ली जा सकती है।

कीटनाशकों का उपयोगः सावधानियां एवं बचाव

विष्णु माया बस्याल[1], आशिष कुमार गुप्ता[2] एवं जगदीश यादव[1]

[1]पादप रोग विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

[2]भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पादप जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान केंद्र

कृषि कार्य में आधुनिक विधियों का प्रयोग जैसे कि उचित सिंचाई, पर्याप्त मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग आदि करने के उपरांत भी फसल की उपज में कमी देखी गई हैं। इसमें पादप रोगों एवं कीटों का महत्वपूर्ण स्थान हैं। पादप रोगों एवं कीटों से लगभग 30 प्रतिशत की हानि हो सकती हैं। बदलती जलवायु (जलवायु परिवर्तन) और आधुनिक कृषि प्रणाली के उपयोग से पादप रोगों की उग्रता बढ़ रही है, और उनसे होने वाली हानि भी बहुत ही बढ़ रही है। इनके द्वारा हानि, बीज के बोने से लेकर भण्डारण तक किसी भी समय हो सकती है।

आज के परिवेश में दीर्घोपयोगी कृषि/टिकाऊ कृषि एक कृषि प्रणाली है जो बिना भूमि की उत्पादकता का विनाश किये या पर्यावरण को भारी हानि पहुंचाए, कीटनाशकों एवं रोगनाशको का उचित उपयोग करके निर्यात व लाभ के स्तर को बनाये रखती है जिससे कृषकों एवं ग्रामीण समाजों के जीवन स्तर में सुधार आता है। इसलिए कीटनाशक आधुनिक कृषि के अभिन्न अंग है। आज के परिवेश में समेकित रोग/कीट प्रबंधन रोग नियंत्रण से रोग/कीट के प्रकोप को न होने देना अथवा रोग के संक्रमण एवं उसकी उग्रता को कम करने पर ध्यान दिया जाता है। इसके अंतर्गत जैविक कवकनाशी, जीवाणुनाशी तथा रासायनिक कीटनाशकों का आवश्यकतानुसार समुचित उपयोग किया जाता है। फसलों के कई मृदा जनित रोगों के प्रबंधन के लिए *ट्राइकोडर्मा हरजियानम, स्यूडोमोनास, ट्राइकोग्रामा* एवं अन्य प्रकार के जैविक कीटनाशक प्रयोग करते है। साथ में रासायनिक कीटनाशक जैसे कि कैप्टान, थिरम का उपयोग भी बीजशोधन के लिए किया जाता है। फसल में बाद की अवस्था में रोग या कीटों का प्रकोप होने पर रासायनिक कीटनाशक से छिड़काव किया जा सकता है।

रासायनिक दवाओं का असुरक्षित तरीके से उपयोग कई तरह की बीमारियों का कारण बन सकते हैं। इसलिए इनका सुरक्षित उपयोग करना चाहिए। समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन पर ध्यान देना चाहिए। कीटनाशक कितना खतरनाक है उसके लिए डिब्बे पर कुछ चिन्ह बने हुए होते है जैसे कि लाल – अत्यन्त जहरीला, पीले रंग का है तो जहरीला, नीले रंग का है तो साधारण जहरीला, हरे रंग का है तो कम जहरीला। कीटनाशक के प्रयोग करने के पश्चात् उसकी प्रतिक्षा अवधि होती है अर्थात उस फल या सब्जी को उपयोग नहीं करना चाहिए। अगर फल एवं सब्जियों पर लाल रंग के निशान वाले कीटनाशक का प्रयोग कर रहे हैं तो उस सब्जी को लगभग 15 दिन तक काम में नहीं लेना चाहिए अन्यथा आपके स्वास्थ पर प्रतिकूल असर पडेगा। अगर पीले रंग के चिन्हों का कीटनाशक है तो प्रतिक्षा अवधि 10–12 दिन है, नीले रंग के लिए 5–7 दिन और हरे रंग के लिए 3–5 दिन का समय कहा गया है।

कीटनाशक खरीदते समय सावधानियां

1. दुकानदार के कहने से कीटनाशक नहीं खरीदना चाहिए। कीटनाशक खरीदने से पहले विशेषज्ञ से सलाह लेनी चाहिए।
2. फसल में कीटनाशक का उपयोग कब करना है उसकी जानकारी होनी चाहिए। जैसे कि धान में एक बीमारी है बकाने, इसके लिए बीजोपचार सबसे कारगर होता है। बाद मे स्प्रे करने पर फसल पर अधिक फायदा नहीं होता और किसान की लागत भी बढ़ जाती है।
3. कीटनाशक को हमेशा लाइसेन्स प्राप्त विक्रेता से ही खरीदना चाहिए। कभी भी फुटपाथ से या अन्य विक्रेता से कीटनाशक नहीं खरीदनी चाहिए।
4. कभी भी आवश्यकता से अधिक कीटनाशक नहीं खरीदना चाहिए। किसान भाई कभी–कभी ये सोचते हैं कि कोई बात नहीं अगले साल उपयोग कर लेंगे, ऐसा नहीं करना चाहिए।

5. कीटनाशक को खरीदते समय उसके डिब्बे पर लेबल जरूर पढ़ना चाहिए।
6. खरीदते समय कीटनाशक का बैच न., रजिस्ट्रेशन न., बनाने की तारीख और एक्स्पाइरी की तारीख जरूर देखनी चाहिए। एक्स्पाइरी तरीख निकल चुकी है और दुकानदार सस्ते मूल्य में बेच रहा है तो ऐसे कीटनाशक को नहीं खरीदना चाहिए।
7. कीटनाशक का डिब्बा फटा हुआ नहीं होना चाहिए। अगर बोतल है तो टूटी–फूटी नहीं होनी चाहिए।
8. कीटनाशक खरीदते समय उसका बिल अवश्य लें। अगर बाद में आवश्यकता पड़ी तो उसका उपयोग कर सकते हैं।
9. कीटनाशक को खरीदकर ले जाते समय डिब्बे को खाने के समान के साथ नहीं रखना चाहिए, हमेशा उसके लिए अलग थैला रखें।
10. अगर अधिक मात्रा में कीटनाशक खरीदा है तो उसको कंधे पर या सिर पर नहीं ढ़ोना चाहिए। उसके लिए किसान भाईयों आपको उपयुक्त उपाय करने चाहिए।

कीटनाशक रखते समय सावधानियां

1. कीटनाशक को हमेशा घर से थोड़ा दूर रखना चाहिए। उनको ऐसी जगह रखें जहाँ आपका या घर के किसी भी सदस्य का लगातार जाना न हों।
2. कीटनाशक अधिक धूप में, या जहाँ सूर्य की रोशनी सीधी पड़ती हो वहाँ नहीं रखना चाहिए। कीटनाशक को गीली जगह में भी नहीं रखना चाहिए।
3. कीटनाशक को मूल डिब्बे से निकालकर किसी और में नहीं रखना चाहिए। ऐसा करने से आप भी भ्रमति हो सकते हैं और कीटनाशक पर भी उसका प्रभाव पड़ सकता है। बेहतरी के लिए जहाँ कीटनाशक रखा है वहां कुछ खतरे का चिन्ह भी बना सकते हैं
4. कीटनाशक को हमेशा बच्चे और पशुओं की पहुँच से दूर रखना चाहिए।

कीटनाशक घोल बनाते समय सावधानियां

1. कीटनाशक बनाते समय हमेशा साफ पानी का प्रयोग करना चाहिए, मिट्टी युक्त पानी या अधिक दिन का रूके हुए पानी का उपयोग नहीं करना चाहिए।
2. कीटनाशक बनाते समय रक्षात्मक कपड़ों का प्रयोग करना चाहिए। चेहरे में मास्क लगाना चाहिए, आँखों में चश्मा पहनें। सिर को गमछे से ढ़क सकते हैं। पूरी बाजू की शर्ट और फुल पैन्ट पहनें। बचे हुए घोल को सुरक्षित जगह पर नष्ट कर दें। बचे हुए घोल को तालाब, नहर या नाली के नजदीक नहीं फेंकना चाहिए।
3. तरल कीटनाशकों को सावधानी पूर्वक उपकरण में डालना चाहिए। कीटनाशक पलटते समय इस बात का ध्यान रखें कि उपकरण आपके मुहँ के पास न हों, उसे नीचे ही रखें।
4. हमेशा छिड़काव के लिए सही उपकरण का चुनाव करें। हमेशा खरपतवारनाशी और कीटनाशी के लिए अलग–अलग उपकरण का उपयोग करना चाहिए।

छिड़काव कैसे और कब करें

- छिड़काव करने के लिए शाम का समय सबसे उपयुक्त होता है। छिड़काव बहुत धूप में नही करना चाहिए। बारिश हो रही हो या बारिश के तुरंत बाद भी नहीं करना चाहिए। जब बहुत हवा चल रही हो तब भी छिड़काव नहीं करना चाहिए।
- छिड़काव हमेशा हवा की दिशा में करना चाहिए। छिड़काव के लिए हमेशा उपयुक्त उपकरण का उपयोग करना चाहिए।
- छिड़काव के बाद उपकरण को अच्छे से साबुन, पानी या डिटरजेंट से धो लेना चाहिए।
- कीटनाशक दवाइयों के डिब्बे को नष्ट कर के मिट्टी में दबा देना चाहिए।
- कीटनाशक दवाइयों के डिब्बों को अन्य किसी कार्य के लिए प्रयोग में नहीं लेना चाहिए।

कीटनाशक का जब बहुत जरूरी हो तब ही उपयोग करना चाहिए। हमेशा कोई भी फसल लगाते समय बीजोपचार जरूर करें। बीजोपचार से फसलों में 10 से 15 प्रतिशत तक उत्पादन मे बढ़ोतरी की जा सकती है। अगर आप बीज उपचार करते हैं तो बीज से फैलने वाले रोगों से बचा जा सकता है और मिट्टी से फसलों का अंकुरण सही होता है।

बागवानी फसलों हेतु आधुनिक कृषि उपकरण

रणबीर सिंह एवं राजकुमार

फार्म संचालन सेवा इकाई
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली–110012

वर्तमान समय में बागवानी फसलों की खेती में आधुनिक कृषि यंत्रों एवं मशीनों का उपयोग महत्वपूर्ण है। आलू की फसल को छोड़कर अन्य सभी फसलों में यंत्रीकरण का निम्न स्तर है। बागवानी फसलों में उन्नत कृषि यंत्रों द्वारा आज किसान किसी भी कृषि कार्यों में होने वाले खर्च, श्रम, ऊर्जा, ईंधन, एवं समय में बचत करके अधिक लाभ कमा सकते हैं तथा अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। आज के परिप्रेक्ष्य में किसानों को बागवानी उत्पादन को जीविकोपार्जन के साथ–साथ व्यवसाय के रूप में भी अपनाने की आवश्यकता है, जिसमें उन्नत कृषि यंत्र एक अच्छा साथ निभा सकते हैं। आज बागवानी फसलों में कृषि यंत्रीकरण को अपनाने के मुख्य कारणों में मजदूरों की कमी, जनसंख्या की वृद्धि, खरपतवारों की वृद्धि और उत्पादन पर व्यय में कमी, आदि हैं। बागवानी फसलों से अधिक उत्पादन लेने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि सभी कृषि कार्य ट्रैक्टर एवं आधुनिक कृषि यंत्रों द्वारा समय पर पूरे किये जायें। आज कम समय में कम लागत लगाकर अधिक उत्पादन लेने की आवश्यकता है और यह तभी सम्भव है, जब बागवानी फसलों का प्रत्येक कार्य उन्नतशील यंत्रों एवं मशीनों द्वारा उचित समय पर उचित ढंग से किया जाये, जैसे :

बागवानी फसलों में कृषि यांत्रिकीकरण की आवश्यकता

हमारे देश में बागवानी फसलों की खेती के कार्यकलापों में कृषि उपकरणों का प्रयोग अधिक प्रचलन नहीं है क्योंकि आज भी अधिकांश अपनी छोटी जोतों पर गहन श्रम पर आधारित परम्परागत विधियों से करते हैं। अधिकतर किसानों में कृषि यंत्रीकरण से होने वाले लाभों से वंछित, जागरुकता एवं जानकारी का भी अभाव है। इसके अतिरिक्त कृषि उपकरणों की ऊँची कीमतें भी एक अन्य कारक है जिसके कारण यंत्रों की खरीद कम सम्पन्न किसानों की पहुँच से बाहर है।

बागवानी फसलों हेतु कृषि उपकरण

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों एवं कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा किसानों की आवश्यकताओं के अनुसार शारीरिक श्रम, समय एवं लागत को कम करने के लिए विभिन्न प्रकार के कृषि यंत्र, उपकरणों एवं मशीनों का विकास और उन्नयन किया जाता है। इस लेख में हाल में विकसित कुछ ऐसे ही बागवानी संबंधित उपकरणों के बारे में संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयास किया गया है, उदाहरणर्थः

सारणी 1. औद्यानिकी फसलों में प्रयोग हेतु उन्नतशील औजार एवं उपकरण

कृषि कार्य	उपकरण
हस्त चालित यंत्र	प्रूनिंग स्केटियर, प्रूनिंग चाकू, थिनिंग कैंची, वीडिंग फोर्क, और पौध रोपण यंत्र, हस्त चालित वीडर/कल्टीवेटर, प्रूनिंग सा, फावडा, गार्डन हो, गार्डन रैक, डिगिंग फॉर्क, ग्रास कटर, हस्त चालित पहिये वाला हो एवं सीडर, उन्नत दराँती आदि।
खेत की तैयारी	पशु एवं ट्रैक्टर चालित हल, कल्टीवेटर, हैरो, रोटावेटर आदि।
भिंडी, मटर, आलू की बुवाई/रोपाई	मानव, पशु, ट्रैक्टर एवं स्वचालित बीज बुवाई यंत्र तथा न्युमैटिक प्लान्टर।
खरपतवार नियंत्रण (वीडिंग/होइंग)	हस्त चालित खुरपा, फावड़ा, ग्रबर, व्हील हैन्ड हो, कोनोवीडर, पशु चालित वीडर/स्वीप, स्वचालित वीडर, ट्रैक्टर चालित स्वीप, कल्टीवेटर।
छिड़काव/बुरकाव	मानव चालित क्रम्प्रेशन स्प्रेयर, पैर से चलने वाला, दवा छिड़काव (फुट) स्प्रेयर, पीठ पर रखकर चलने वाला (नेपसैक) स्प्रेयर, छोटे इंजन से चलने वाला स्प्रेयर एवं डस्टर, हस्त चालित डस्टर, कन्ट्रोल ड्रापलेट स्प्रेयर आदि।
कटाई एवं चुनाई	मानव चालित चुनाई या चाकू, खुरपा, फावड़ा, आलू फसल हेतु पशु/ट्रैक्टर चालित डिगर।

खाद्य प्रसंस्करण	श्रेणीकरण, ग्रेडिंग, पिसाई, जुशर, ड्रायर आदि उपकरण।

हस्त चालित उपकरण

कुदाली, फावड़ा, कुल्हाड़ी, गेंती, खुरपा, सब्बल, चाकू, सिकेटियर, प्रूनिंग–सा, वीडर, स्प्रेयर एवं डस्टर, दराँती आदि हस्त चालित औजार किसानों द्वारा पौधशाला एवं सब्जियों को उगाने में प्रयोग किये जाते हैं। इन स्थानीय उपलब्ध औजारों की गुणवत्ता अच्छी नहीं है तथा इनको बदलने की आवश्यकता है। अच्छी गुणवत्ता के विभिन्न प्रकार के हस्त चालित औजार जैसे प्रुनिंग सिकेटियर, प्रूनिंग चाकू, थिनिंग कैंची, वीडिंग फॉर्क, और पौध रोपण यंत्र, हस्त चालित वीडर/कल्टीवेटर, प्रूनिंग सा, फावडा, गार्डन हो, गार्डन रैक, डिगिग फॉर्क, ग्रास कटर, हस्त चालित पहिये वाला हो सीडर एवं उन्नत दराँती विकसित किये गये हैं। प्रमुख हस्त चालित यंत्रों का विवरण निम्नलिखित है।

'पूसा' क्रिसेन्ट (चन्द्राकार) हैन्ड हो

यह भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित सभी फसलों के लिए सस्ता एवं सरल हस्त चालित औजार है, जिसमें एक लम्बी लकड़ी का हैण्डिल तथा अर्ध–चन्द्राकार लोहे का ब्लेड लगा होता है (चित्र1)। इस यंत्र द्वारा मनुष्य सीधा खड़ा होकर पंक्तियों में बोई गयी सब्जियों की फसलों में निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार का नियंत्रण कर सकता है। इसका भार 02 कि.ग्रा. तथा इसकी कार्य क्षमता 0.08 हेक्टेयर/दिन है।

चित्र 1. हस्त चालित क्रिसेन्ट हो

गुड़ाई यंत्र (हैंड हो)

इसमें तीन नोकदार साधारण लोहे के हुक होते हैं जो एक कोणीय लोहे के टुकड़े पर जुड़े रहते हैं। इन हुकों की शक्ल सर्प के फन के आकार की होती है। कोणीय लोहे की बीच मे ऊपर की ओर एक कुल्फीनुमा पाइप जुड़ा रहता है, जिसे सामी कहते हैं। सामी में दो छिद्र होते हैं जिसमें 135 सें.मी. लम्बा बांस फिट कर दिया जाता है। बांस को पकड़कर यह प्रयोग में लाया जाता है। इसका वजन 2 कि.ग्रा. एवं खिंचाई 25.3 कि.ग्रा. है (चित्र 2)।

चित्र 2. हैड हो

ब्रश कटर

यह एक आधुनिक कटाई–छंटाई यंत्र है। इसके उपयोग से सीधी खड़ी फसल जैसे–गेहूँ, गन्ना आदि की कटाई की जा सकती है। साथ ही अधिक ऊंचे खरपतवार व झाडियां आदि भी काटी जा सकती है। इसमें एक छोटा पॉवर इंजन लगा होता है, यह एक मजदूर द्वारा आसानी से संचालित किया जा सकता है। यह कम जोत वाले किसानों के लिए उपयोगी कटाई यंत्र है (चित्र 3)।

चित्र 3. ब्रश कटर

मानव चालित हल एवं सीड ड्रिल

कम क्षेत्रफल या प्रयोगात्मक प्रेक्षत्र में सब्जियों, गेहूँ एवं मक्का आदि की बुवाई हेतु उन्नत हस्त चालित सीड–ड्रिल का विकास किया गया है। इस यंत्र से बुवाई के समय एक

आदमी संचालित करता है तथा दूसरा आदमी हाथ से बीज की बुवाई करता चलता है (चित्र 4 क व ख)।

चित्र 4. सीड ड्रील

मानव चालित डिब्बलर

इस हस्त चालित यंत्र का विकास विभिन्न फसलों जैसे गेहूँ, चना, मटर, अरहर, मक्का व भिण्डी आदि फसलों को छोटे क्षेत्र में बुवाई के लिये किया गया है। इस यंत्र से एक बार में 1 से 3 बीज एक साथ गिरते हैं। इसका वजन 3 कि.ग्रा. तथा कार्य क्षमता 8–10 हजार वर्ग मीटर प्रति दिन है। शून्य जुताई एवं फसल अवशेष की उपस्थित में बीज की बुवाई के साथ उर्वरक भी आसानी से डाला जा सकता है। बीज व उर्वरक उपयोग दक्षता में वृद्धि के साथ–साथ फसल उत्पादन में 20 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है। इस यंत्र की कीमत लगभग 2–3 हजार रूपये तक होती है (चित्र 5)।

चित्र 5. डिब्बलर

हस्त चालित सब्जियों व फूलों की पौध रोपाई यंत्र

यह एक पुरुष/महिला द्वारा चालित इस बुवाई यंत्र है इस यंत्र द्वारा एक उचित लाइन में एवं उचित दूरी पर

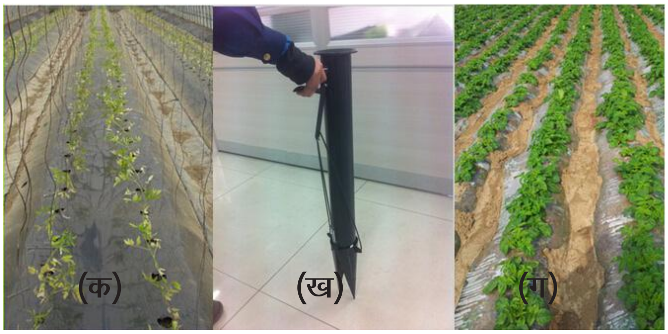

चित्र 6: प्लग प्लान्टर

सब्जियों (टमाटर, बैंगन, पत्तागोभी मिर्च, फूलगोभी, करेला) एवं फूलों (गेंदा) की रोपाई की जा सकती है। रोपाई के लिये पौध को प्रो–ट्रे में तैयार किया जाता है।

इस यंत्र द्वारा रोपाई करने में, पारंपारिक रोपाई की तुलना में कम समय में अधिक पौध की रोपाई की जा सकती है तथा यह उपयोग में भी सरल है (चित्र 6)। इस को प्रयोग करने में मांसपेशीय विकार तथा शारीरिक थकान में कमी एवं कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। किसान बिना झुके पौधे लगा सकते हैं एवं पौधों की रोपाई एक पंक्ति में होती है। इस यंत्र से एक व्यक्ति 7 घंटे में औसतन 5000 से 7000 पौधे आसानी से लगा सकता है। इस यंत्र की कीमत 3 हजार रूपये है।

पॉवर टिलरः औद्यानिकी फसलें लेने वाले तथा कम जोत वाले किसानों के लिए पॉवर टिलर एक बहुपयोगी कृषि यंत्र है। पावर टिलर दो पहियों का मिनी ट्रैक्टर है जिसके द्वारा छोटे खेतों व बागों में जुताई, निराई–गुड़ाई तथा अन्य कार्य जैसे पम्प का चलाना, ट्रॉली द्वारा ढुलाई करना आदि कार्य किये जा सकते है (चित्र 7)। इसके द्वारा वे सभी कृषि कार्य जिनमें सामान्यतः ट्रैक्टर की आवश्यकता होती है, जैसे जुताई, गुड़ाई, सिंचाई, पीड़कनाशी का छिड़काव, थ्रेशर चलाना आदि किये जा सकते है। इसमें 5–12 हार्स पावर का इंजन लगा होता है। कम वजन वाले पावर टिलर का प्रयोग पर्वतीय क्षेत्रों के लिए सुगम व उपयुक्त है।

चित्र 7 पावर टिलर

ट्रैक्टर चालित वीडर

ट्रैक्टर चालित कल्टीवेटर से भी निराई कार्य अच्छी तरह हो जाता है। परन्तु कतारों की दूरी ऐसी होनी चाहिये

कि ट्रैक्टर उसमें चल सकें। इन यंत्र में 7, 9, 11 या 13 स्प्रिंग लोडिड या रिज्ड टाइनों के साथ खुरपे या स्वीप लगे होते हैं (चित्र 8)। भारतीय मृदाओं के लिए (जैसेः काली मृदाएं) तथा अधिक दूरी पर बोई गई फसलों के लिए ट्रैक्टर चालित वीडर प्रयोग में लाये जाते हैं। इससे मिट्‌टी भुरभुरी हो जाती है। इसकी कार्य क्षमता 0.50 है. /घण्टा है।

चित्र 8 ट्रैक्टर चालित वीडर

बहुउद्‌देशीय बागवानी हेतु हाइड्रोलिक लिफ्ट प्रणालीः बाग–बगीचों की प्रूनिंग यानी कैनोपी एक बहुत ही आवश्यक, लेकिन कठिन काम है। पेड़ बड़े होने के कारण चोटी तक किसानों की पहुंच नही हो पाती है, जिससे पेड़ों की सही कटिंग नही होती है। कटिंग सही नही होने से पेड़ों पर नई टहनियों का विकास नहीं हो पाता है। इसका सीधा असर पैदावार पर पड़ता है। नागपुर के संतरे के बाग हो या उत्तर प्रदेश के अमरूद या फिर किसी भी तरह के फलदार पेड़ों के बाग–बगीचों में समय पर और सही तकनीक से प्रूनिंग न होने के चलते पैदवार पर असर पड़ रहा है। इन सब बातों के अलावा पेड़ों की प्रूनिंग काफी खर्चीली और जोखिम भरा काम भी है। किसान पेड़ों पर चढ़ कर, डालों पर लटक कर सही तकनीक से प्रूनिंग नही कर पाते हैं। लेकिन अब इस समस्या का समाधान के लिए ऑर्चर्ड प्रूनर उपलब्ध है। बाग में बड़े पेड़ों से फल तोड़ने, कटाई, छँटाई, कीटनाशक छिड़काव तथा चंदवा प्रबंधन जैसे कठिन कार्य आसानी से करने के लिए इस का प्रयोग किया जाता है। यह यंत्र 12 एच.पी. इंजन से चलता है तथा इसका भार 200 कि.ग्रा. होता है। ''ग्रास ब्लेड्स'' कृषि मशीनरी निर्माण कंपनी ने आर्चर्ड प्रूनर बनाएं है, जो 24 से 60 हॉर्सपावर के ट्रैक्टर से चलता है (चित्र 9)।

चित्र 9 बागवानी हेतु हाइड्रोलिक लिफ्ट प्रणाली

बागों में छिड़काव तथा बुरकाव यंत्र

बागवानी फसलों को कीड़ों एवं बीमारियों से बचाने के लिए छिड़काव एवं भुरकाव यंत्रों का प्रयोग करते हैं। ये यंत्र मनुष्य द्वारा चलाये जाते हैं। इन यंत्रों में हैण्ड कम्प्रेशन स्प्रेयर, पैर से चलाने वाला स्प्रेयर, पीठ पर रखकर लीवर से चलने वाला स्प्रेयर, छोटे इंजन से चलने वाला स्प्रेयर एवं डस्टर, हाथ से चलने वाला डस्टर तथा कन्ट्रोल ड्रापलेट स्प्रेयर प्रचलित है। ट्रैक्टर चालित स्प्रेयर भी उपलब्ध हैं तथा प्रयोग में लाये जा रहे हैं। पर्णीय छिड़काव में रसायनों के प्रयोग हेतु ब्लास्ट स्प्रेयर का प्रयोग किया जाता है। तेज हवा की अवस्था में पर्णीय छिड़काव नहीं करना चाहिए। सभी स्प्रेयरों के प्रयोग से 30–50 प्रतिशत रसायनों की बचत होती है। सभी फसलों में विभिन्न तरह के यंत्रों का बड़े पैमाने पर प्रचार–प्रसार करने की आवश्यकता है।

ट्रैक्टर चालित स्प्रेयर

इसका उपयोग बड़े खेतों एवं बागवानी में पीड़कनाशियों को छिड़कने के लिए किया जाता है। दाब उत्पन्न करने के लिए रोटर वेन पम्प या टुल्लु पम्प लगा होता है जिसे ट्रैक्टर के पी.टी.ओ. शॉफ्ट द्वारा चलाया जाता है। इसमें फ्रेम पर एक पम्प, दाबमापी, टंकी, प्रेशर रिलिफ वाल्व, सक्शन एवं निकास नली, बूम तथा समायोज्य फ्रेम (एडजेस्टेबल) नॉजल लगे होते हैं (चित्र 10)। इस फ्रेम को ट्रैक्टर के तीन प्वाइंट लिंकेज से जोड़ा जाता है और इस स्प्रेयर के बूम को आवश्यकतानुसार ऊपर या नीचे किया जा सकता है।

चित्र10. पावर–चालित स्प्रेयर

यह स्प्रेयर एक या दो 200 लीटर की टंकी या एक 400 लीटर की टंकी के साथ उपलब्ध है। इसका बूम 6. 5 लीटर लम्बा होता है जिसमें 12–14 समायोज्य नॉजल लगे होते हैं। सिंगल ड्रम वाले स्प्रेयर का भार 150 कि.ग्रा. तथा डबल ड्रम वाले स्प्रेयर का भार 200 कि.ग्रा. होता है। खड़ी फसल में स्प्रेयर के प्रयोग के लिए ट्रैक्टर चालन के लिए खेतों में समुचित रास्ते का प्रावधान करना आवश्यक है।

ट्रैक्टर चालित लॉन मोअर

यह घास काटने की मशीन है, जिसका प्रयोग लॉन की घास काटने तथा उसे एक समान बनाने के लिए किया जाता है। इसमें एक बेलन होता है जिस पर कुछ फलक या ब्लेड लगे रहते हैं। चलाने पर बेलन घूमता है तथा उसमें लगे ब्लेड घास को काटते हैं। ब्लेड़ों को समायोजित करके इच्छानुसार घास की ऊँचाई व नीचाई से कटाई की जा सकती है। गृहवाटिका के लिए एक छोटी लॉन मोअर उपयोगी रहती है। ट्रैक्टर चालित मोअर का आकार 1.75 से 2 मीटर होता है। इनकी कार्य क्षमता 2 से 8 हेक्टेयर प्रति दिन है (चित्र 11)।

चित्र 11. ट्रैक्टर चालित लॉन मोवर

बागवानी फसलों में यंत्रीकरण प्रोत्साहन के उपाय

भारत में बागवानी में यंत्रीकरण का स्तर बहुत ऊँचा करना है, तो इन फसलों में यंत्रीकरण की दर में वृद्धि हेतु निम्न उपाय करने चाहिए।

1. देश में किसानों के लिए उन्नत एवं अच्छी गुणवत्ता के हस्त चालित औजारों तथा उपकरणों की व्यापारिक उपलब्धता एवम् लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है। सभी किसानों के लिए टी.वी., समाचार पत्र में विज्ञापन तथा उपकरणों के प्रदर्शन तथा यंत्रों की उन्नति पर अनुदान दिया जाना चाहिए।
2. विकसित देशों में उपलब्ध उच्च क्षमता, परिशुद्ध उपकरणों का प्रसार–प्रचार करना चाहिए।
3. समय–समय पर मिट्टी पलटने हेतु कस्टम हायरिंग केन्द्रों द्वारा मिट्टी पलट यंत्र उपलब्ध कराए जाएं।
4. उठी हुई क्यारियां बनाने, सटीक रूप से समतल बनाने वाले उपकरण तथा जल उपयोग दक्षता सुधारने हेतु कस्टम हायरिंग केन्द्रों द्वारा उपलब्ध कराए जाएं।
5. सिंचाई जैसे ड्रिप एवं स्प्रिंकलर प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाए ताकि ऊर्जा की बचत हो सके और जल का अनुचित उपयोग रोका जा सके।
7. कृषि यांत्रिकीकरण के विकास में तेजी लाने के लिए विभिन्न प्रकार की कृषि मशीनरी पर विशेष प्रोत्साहन एवं उच्च सब्सिड़ी देनी चाहिए।

बागवानी फसलों में सभी कृषि कार्य समयबद्ध रूप से हो तथा आदानों के दक्ष उपयोग से उत्पादकता एवं लाभप्रदता में वृद्धि हो, साथ ही साथ किसानों के कठिन श्रम की बचत हो, इस हेतु यंत्रीकरण बहुत महत्वपूर्ण है। बागवानी फसलों में यंत्रीकरण से उत्पादन लागत कम आती है एवं उत्पादकता बढ़ती है क्योंकि वे निवेश का अधिकतम उपयोग तथा कृषि प्रचालनों की समयबद्धता सुनिश्चित करते है। उपरोक्त विवरण हेतु अधिक जानकारी के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों तथा राज्यों के कृषि विश्वविद्यालयों के कृषि अभियांत्रिकी विभाग में सम्पर्क कर सकते हैं।

मधुमक्खी पालन एवं प्रबंधन

जय प्रकाश सिंह एवं सुभाष चंद्र

कीट विज्ञान संभाग
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

मधुमक्खियों का मौनगृहों में प्रबंधन एवं रखरखाव को मधुमक्खी पालन (एपिकल्चर) कहते हैं। जहाँ मधुमक्खी को रखा जाता है उसे मधुवाटिका (एपीयरी) कहते हैं। मधुमक्खी पालन एक लाभकारी व्यवसाय है जिसे किसान या वेरोजगार लोग अपनाकर एक वर्ष मैं लाखो की कमाई कर सकते हैं। मधुमक्खी पालन अधिक आमदनी का एक अच्छा विकल्प है। इस व्यवसाय को कम लागत में शुरू किया जा सकता है। जिन किसानों की जोत छोटी है वह खेती बाड़ी के साथ–साथ मधुमक्खी पालन व्यवसाय को आसानी से कर सकते हैं। यह सभी क्षेत्रों एवं उन क्षेत्रों में जहाँ कृषि फसलों की खेती कठिन है वहाँ भी आसानी से अपनाया जा सकता है। किसानों की आय बढ़ाने के लिए और मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने के लिए देश के कई संस्थान इस व्यवसाय एवं प्रशिक्षण की ओर ध्यान दे रहे हैं। किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से प्रशिक्षण लेकर इस व्यवसाय को शुरू किया जा सकता है। राष्ट्रीय मधुमक्खी परिषद् (नेशनल बी बोर्ड) से प्रमाणित संस्थाओं से मधुमक्खियों को खरीदा जा सकता है। मधुमक्खी आप उद्यान विभाग या फिर कृषि विज्ञान केंद्र से भी ले सकते हैं। मधुमक्खी पालन की शुरुआत दो से पाँच छत्तों के साथ की जा सकती है।

मधुमक्खी पालन के लिहाज से मुख्य रूप से यूरोपियन या इटेलियन मधुमक्खी (*एपिस मेलीफेरा*), भारतीय मधुमक्खी (*एपिस सेरेना*) एवं डंक रहित (स्टिंगलेस) मधुमक्खी या एम्बर बी (मेलीपोना एवं ट्रीगोना) मुख्य हैं। जिसमें यूरोपियन या इटेलियन मधुमक्खी को काफी आसानी से पाल सकते हैं क्योंकि वह बहुत शांत स्वभाव की होती है मधुमक्खी पालन से कई प्रकार के मधुमक्खी उत्पादों जैसे मधु, रॉयल जेली, विष, मोम, प्रोपोलिस इत्यादि के अलावा अप्रत्यक्ष लाभों के साथ–साथ रोजगार का भी सृजन होता है। मधुमक्खियां परागण का काम करती हैं यानि पर–परागित पुष्पों में पराग को एक पुष्प से दूसरे पुष्प तक ले जाती हैं जिससे उनकी निषेचन क्रिया पूरी होती है। इस तरह मधुमक्खियां फसलों में परागण क्रिया करके उनकी उपज, बीजोत्पादन, फसलोत्पादन एवं गुणवत्ता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

मधुमक्खियों की पालने योग्य प्रजातियाँ

एपिस मेलीफेरा (यूरोपियन या इटेलियन मधुमक्खी)

यह भारतीय मधुमक्खी से आकार में बड़ी होती है। इसके एक मौनगृह में दस छत्ते होते हैं। इनके छत्तों की लम्बाई 440 मिमी एवं चौड़ाई 228 मिमी होती है। इन मधुमक्खियों का छत्ता अंधेरे में होता है और ये समानान्तर छत्ते लगाती हैं। रानी अपेक्षाकृत बड़े आकार की होती है जिसका जीवनकाल दो से तीन वर्ष होता है एवं 1500–2000 अंडे प्रतिदिन देती है। इसकी मादा श्रमिक अच्छे भोजन की तलाश में लगभग 2.5 किलोमीटर तक के क्षेत्र में भ्रमण कर पौधों से पुष्परस एवं पराग एकत्र करती हैं। इस प्रजाति की उत्पादकता लगभग 25 किग्रा. शहद प्रति मौनगृह प्रतिवर्ष होती है। यह मधुमक्खी बहुत शान्त स्वभाव की होती है जिसके कारण इस प्रजाति पालन काफी आसान होता है एवं शहद उत्पाद हेतु यह मधुमक्खी पूरे विश्व मैं पाली जाती है।

एपिस सेरेना इण्डिका (भारतीय मधुमक्खी)

यह मधुमक्खी भारतवर्ष के सभी भागों में पाई जाती है। यह मध्यम आकार की होती है तथा यह बंद स्थानों एवं अंधेरे वाली जगहों जैसे पेड़ों के खोखलों एवं अन्य समान संरचना वाले स्थानों पर एक साथ 7 से 8 छत्ते समानान्तर दूरी पर लगाती हैं। इनके रानी का जीवनकाल भी 2 से 3 वर्ष होता है जो प्रतिदिन 700 से 1600 अण्डे देती है। श्रमिक मधुमक्खी 800 मीटर से लेकर 1 किलोमीटर परिधि

तक वनस्पतियाँ पर भ्रमण कर पुष्परस एवं पराग एकत्रित करती हैं। इनकी मधु उत्पादन की क्षमता लगभग 10 से 15 किग्रा. प्रतिवर्ष प्रति मौनगृह होती है।

स्टिंगलेस मधुमक्खी (मेलीपोना व ट्रीगोना)

यह मधुमक्खी डंकहीन होती है इसके छत्ते छोटे गोलाकार एवं काले रंग के होते हैं। इससे प्राप्त शहद की औषधीय गुणवत्ता ज्यादा होती है ये फसलों में पर परागण के लिए सर्वाधिक उपयोगी होती है। इनका पालन पेड़ या बांस की खोखली संरचनाओं में किया जा सकता है। स्टिंगलेस मधुमक्खी (ट्रीगोना प्रजाति) से प्रतिवर्ष 600 ग्राम प्रति मौनगृह शहद का उत्पादन होता है।

मधुमक्खी का जीवनचक्र

मधुमक्खी एक सामाजिक कीट है जो एक परिवार की तरह काम करती है। मधुमक्खी के छत्ते (कॉलोनी) में रानी, नर व् मादा श्रमिक होते हैं पूरे परिवार में एक ही रानी मधुमक्खी होती है। मधुमक्खी में श्रम विभाजन लिंग एवं आयु के अनुसार होता है। एक मधुमक्खी के छते में 40000–50000 सदस्य होते है एवं एक मौनवंश में केवल एक रानी, 20–200 नर व शेष श्रमिक मधुमक्खियां होती हैं। इनका जीवनचक्र तीन अवस्थाओ में पूरा होता है।

रानी मक्खी : रानी मक्खी आकार में सबसे बड़ी, सक्रिय एवं सुनहरे रंग वाली पूर्णतया विकसित मादा होती है। इसमें मोमग्रंथि का विकास नहीं होता है इसका जीवन काल 2–3 वर्ष का होता है।

नर मक्खी (ड्रोन) : सक्रिय नर मक्खी अनिषेचित अंडे से उत्पन होता है। इनका जीवन चक्र लगभग 60 दिन का होता है एवं इसका कार्य केवल निषेचन करना होता है।

श्रमिक मक्खी : यह अपूर्ण विकसित एवं बंध्य मादा होती है। एक छत्ते में इनकी संख्या 20000–30000 तक होती है एवं इनका जीवनकाल 35–42 दिन का होता है। परिवार में सबसे बड़ा काम श्रमिक मक्खियों का होता है। इनके कार्यो का बटवारा उम्र के आधार पर होता है, जैसे 1–14 दिन तक सक्रिय रूप से छत्ते की सफाई करना, 14–20 दिन तक छत्ते के प्रवेश द्वार पर सुरक्षाकर्मी का कार्य करना एवं 20–35 दिन तक पुष्परस/मकरंद एवं परागकण का संग्रहण करना होता है।

मधुमक्खी पालन का तरीका एवं का जीवन चक्र प्रबंधन

मधुमक्खी पालन शुरू करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय फरवरी – मार्च या अक्टूबर – नवम्बर का होता है। यह समय तापक्रम की दृष्टि से रानी मधुमक्खी द्वारा सर्वाधिक अंडा उत्सृजन के लिए उपयुक्त होता है पारम्परिक मधुमक्खी पालन में प्राकृतिक रूप से मधुमक्खी द्वारा छत्ता बनाया जाता है। इस विधि से छत्तों को बिना नष्ट किये या बिना हटाए मधु निकालते हैं। आधुनिक मधुमक्खी पालन व्यावसायिक रूप से कहीं भी किया जा सकता है, जिसमें कृत्रिम तरीके के सांचो पर मधुमक्खी द्वारा छत्ता बनाया जाता है और उसमें मधु तैयार होता है। छत्तों को आसानी से हटाया जा सकता है और बार–बार प्रयोग में लाया जा सकता है।

मधुमक्खी पालकों को मधुमक्खी पालन से अधिक लाभ लेने हेतु मौनवंश की देखभाल एवं मौसम के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंधन करना अति आवश्यक होता है। इसके लिये निम्न बिंदुओं का अनुपालन करना चाहिए।

मधुमक्खी अपने भोजन के लिए पूर्णतया पुष्पीय पौधों पर आश्रित होती है। मधुमक्खी पालकों को तीन किलोमीटर परिधि के क्षेत्र में मौसमी फूल वाली वनस्पतियों जैसे सब्जियों, फलदार वृक्ष, शोभाकारी पौधे एवं वानिकी वृक्षों के रोपण एवं आच्छादन की जानकारी होना अति आवश्यक है। मधुवाटिका के लिये खुले धूप वाले स्थानों का चयन करना चाहिए जहां पर स्वच्छ जल एवं प्रचुरता में फूल वाली फसलें उपलब्ध हो एवं बिजली के उपकरणों, सडक, यातायात से व्यवधान उत्पन्न न हो। मधुमक्खी पालन हेतु मधुमक्खियों की उपयुक्त प्रजातियो (ए. मेलीफेरा एवं ए. सेरेना) का चयन करें। अच्छी गुणवत्ता वाली एवं माइट व रोग रहित कॉलोनी का चयन करना चाहिए। किसी प्रमाणित संस्था से ही मधुमक्खी खरीदना चाहिए। मधुवाटिका में कॉलोनी को सुरक्षित जगह में रखना चाहिए।

मौनवंश का नियमित अंतराल पर निरीक्षण करते रहना चाहिए इसके अंतर्गत मौनवंश के बक्सों में रानी मक्खी एवं

अंडोत्सर्जन, छत्तों में मधु पराग का संचय, कीटों एवं रोगों के प्रकोप की जानकारी प्राप्त करना होता है। बसंत काल में एक सप्ताह पर जबकि वर्षा काल में दो सप्ताह पर मौनवंश का निरीक्षण अवश्य करना चाहिए।

पानी की व्यवस्था करना तथा अभावकाल में भोजन का प्रबंध करना भी जरूरी हो जाता है। मधुमक्खियों का प्रजनन के समय विशेष देखभाल एवं मौसमी प्रबंध करना चाहिए। इसी तरह पीड़कनाशी या बीमारियों से मधुमक्खियों की कॉलोनी का बचाव करना चाहिए।

मधुमक्खी पालन हेतु आवश्यक उपकरण

मधुमक्खी पालन शुरू करने हेतु कम लागत एवं सस्ते उपकरणों की आवश्यकता होती है। मौन गृह (मधु बक्सा), मधुमक्खी पालन का अति महत्वपूर्ण उपकरण है। इसके अतिरिक्त मधुमक्खी पालन के आवश्यक उपकरण इस प्रकार हैं– केन्द्रीय छत्ता, स्टैंड फ्रेम, फीडर, रानी मक्खी एक्सक्लूडर, मधु निष्कर्षक, ध्रुमक, टूल किट, स्टील कंटेनर, कुकिंग यंत्र, चाकू, ट्रे, रानी मधुमक्खी पालक किट, काम्ब फाउंडेसन शीट आदि।

कृत्रिम भोजन की व्यवस्था

भोजन अभाव काल के दौरान, मधुमक्खी की कॉलोनियों ऐसी जगह स्थानान्तरित करना चाहिए जहाँ वानस्पतिक पुष्पीय स्रोत उपलब्ध हों। भोजन अभाव काल के समय मधुमक्खी हेतु भोजन स्रोत के रूप में कृत्रिम भोजन देना अति आवश्यक होता है। कृत्रिम भोजन बनाने के लिए उबले हुए पानी का प्रयोग करना चाहिए एवं एंटी बायोटिक्स का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कृत्रिम भोजन के रूप में गर्मियों में चीनी के घोल की सांद्रता 25 प्रतिशत जबकि वर्षा एवं शरद काल में यह सांद्रता 50 प्रतिशत रखनी चाहिए। सामान्यतया 800–1000 ग्राम सर्करा प्रति कॉलोनी प्रति 10 दिन के लिए पर्याप्त होती है। कृत्रिम भोजन प्रवंधन हेतु शक्कर के 50 प्रतिशत सांद्रता वाले घोल या सोयाबीन आटा, यीस्ट, दूध का पाऊडर, शर्करा, शहद (3:1:1:22:50) के मिश्रण का प्रयोग करें। मौन वंशों को भोजन अभाव के समय एक स्थान से दूसरे स्थान में अधिक शहद एवं वृद्धि के लिए स्थानांतरण (माइग्रेसन) करना चाहिए। प्रवजन से पहले शहद का निष्कर्षण अवश्य कर लें एवं मधुमक्खी का प्रवजन सदैव शाम के समय करें।

मौनवंश का विभाजन

अच्छे मौसम में मधुमक्खियों की संख्या बढ़ती है अतः मधुमक्खी परिवारों का विभाजन करना चाहिए। ऐसा नहीं करने पर मधुमक्खियां भाग सकती हैं। मौनवंश से उसी प्रकार का दूसरा मौनवंश बनाने का काम इस प्रकार करें जिससे भोजन संचय एवं शिशु मौन दो बराबर–बराबर गृहों में विभाजित हो जाएँ। विभाजन के लिए मूल परिवार के पास खाली बक्सा रखें और मूल मधुमक्खी परिवार से 50 प्रतिशत ब्रूड, शहद एवं पराग वाले फ्रेम तथा रानी वाला फ्रेम भी नये बक्से में रखे। दोनों बक्सों को रोज एक एक फीट एक दूसरे से दूर करते जाएं इस प्रकार नया बक्सा तैयार हो जायेगा।

मौसमी प्रबंधन

मधुमक्खी के छत्तों का मौसम के अनुसार प्रबंधन करें जैसे – ग्रीष्मकाल में शेड का प्रयोग, वर्षा ऋतु में रोगों एवं कीटों से बचाव, शरद ऋतु में ठण्ड से बचाव एवं वसंत ऋतु में मधुमक्खियों के स्वार्मिंग की प्रकिया को रोकने की व्यवस्था करना आदि। विभिन्न ऋतुओं में अपनाये जाने वाले आवश्यक प्रबंध इस प्रकार हैं।

ग्रीष्मकालीन प्रबंधन

मधुवाटिका के आस–पास स्वच्छ जल की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए तथा कॉलोनियों को छाया में रखना चाहिए। तेज धूप से बचाव के लिए कॉलोनियों को पटसन के गीली बोरियों से ढक कर रखना चाहिए।

वर्षाकालीन प्रबंधन

मधुमक्खियों की कॉलोनियों को भोजन अभावकाल के समय आवश्यकतानुसार कृत्रिम भोजन उपलब्ध कराएं एवं पीड़क कीटों व रोगों एवं भारी वर्षा से बचाव करें। इसके लिए 800 ग्राम चीनी का प्रयोग/कॉलोनी/10 दिन के अंतराल में करना चाहिए। पराग की कमी होने पर कृत्रिम भोजन में चीनी के साथ सूखा दूध का पाउडर एवं सोयाबीन का आटा मिलाकर देना चाहिए।

शीतकालीन प्रबंधन

शीतकाल में मौन गृह को धूप में रखें एवं उन्हें चारों तरफ से पुआल या पटसन (टाट) की बोरियों से ढक दें। मौन गृहों में छिद्र नहीं होने चाहिए यदि हों तो उन्हें बंद कर देना चाहिए। इनके निचले पट्टों (इनर कवर) को बोरियों से अवश्य ढक देना चाहिए।

अस्वस्थ मौनवंशों का प्रबंधन

अस्वस्थ मौनवंशों के प्रबंधन में संगरोध का पालन करें अर्थात स्वस्थ मौनवंशों को अस्वस्थ मौनवंशों से दूर रखें। अस्वस्थ मौनवंश से शहद नहीं निकालना चाहिए। रानी मधुमक्खियों को दो वर्ष के अंतराल पर बदले।

मधुमक्खियों का समन्वित रोग एवं कीट प्रबंधन

मधुमक्खी में कई प्रकार के पीड़कों (कीटों एवं रोगों) का प्रकोप होता है। मधुमक्खी के महत्वपूर्ण रोगों के अर्न्तगत फाउलब्रूड, चाकब्रूड, सैकब्रूड, नोसीमा आदि आते हैं। माइट (वरोरा स्पी.) व कीटों में वास्प (वेस्पा औरेंटैलिस), बीटल (एथीना टुमिडा), चींटी (ओइकोफाइला एवं मोनोमोरियम), वैक्समोथ (गैलेरिया मेलोनेला) आदि मुख्य हैं। इनसे बचाव के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाएं इनसे बचाव के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाएं।

- मधुमक्खी के छत्ते को 15 से 20 मिनट तक धूप में रखें।
- मधुमक्खी के डिब्बे की साफ –सफाई करें। किनारों की सफाई के लिए बुन्सन बर्नर का प्रयोग करें। मधुमक्खी के खाली छत्तों को गंधक (सल्फर) के चूर्ण से 230 ग्राम प्रति घन मीटर से उपचारित करें या खाली छत्तों को निर्जलीकृत करने के लिए 80 प्रतिशत एसिटिक अम्ल के 150 मिली./छत्ता प्रयोग में लाएं।
- रोगों के प्रभावी प्रबंधन हेतु उपकरणों को 49 डिग्री से.ग्रेड पर 24 घंटे तक रख कर निर्जमीकृत करें अथवा सभी संक्रमित उपकरणों को 7 प्रतिशत फार्मेलिन एवं साबुन के घोल में 24 घण्टे तक रखने के बाद साफ पानी से धोकर सुखाने के बाद प्रयोग में लाएं।
- मधुमक्खी के डिब्बे को स्टैंड पर जमीन से 40 से 60 से.मी. की ऊंचाई पर रखें। स्टैंड के पाओं को जल से भरी हुई कटोरियों के ऊपर रखना चाहिए।
- दो एपियरी के मध्य कम से कम 3 किलोमीटर की दूरी रखें। कालोनियों की पंक्तियों के बीच की दूरी 10 फीट एवं कालोनियों के बीच की दूरी कम से कम 3 फीट रखें। संक्रमित कालोनी से छत्ते न बदलें न ही संक्रमित कालोनी वाले उपकरणों का प्रयोग नई कालोनी में करें।
- परभक्षी चिड़ियों से मधुमक्खी के छत्तों को बचाने के लिए ड्रम ध्वनि का प्रयोग करें।
- जहाँ तक सम्भव हो सके कालोनियों में जालीदार तलपट्टो का प्रयोग करें इससे वरोआ माइट के प्रकोप में 25 प्रतिशत तक की कमी आती है दिसम्बर से अप्रैल तक कॉलोनियों में सुपर लगाना चाहिए।
- माइट प्रतिरोधी कॉलोनियों का प्रयोग करें। वरोआ माइट के रोकथाम का उपाय अभाव काल एवं बसन्त काल के समय अवश्य अपनाना चाहिए।
- माइट के नियंत्रण के लिए सल्फर (99.5 प्रतिशत) का प्रयोग 0.5 ग्राम/फ्रेम केवल फ्रेम के ऊपरी सतह पर सावधानी से करें जिससे यह मधुमक्खियों के सम्पर्क में न आये अन्यथा यह मधुमक्खियों के लिए विषाक्तता का कारण बन जायेगा या मिथाइल सैलिसायलेट (99 प्रतिशत) का 3 मिली./मौनग्रह रुई के फुहे के माध्यम से दें। इसके अलावा आक्जैलिक अम्ल के 32 ग्राम को शक्कर के शर्बत (1:1) में घोलें एवं इसके 20–30 मिली. का प्रयोग मधुमक्खी के प्रवेश द्वार को गीला करने के लिये करें।
- सैकब्रूड के नियत्रण के लिये प्रभावित छत्तों पर धूमन (धुएँ) के रूप में 2 प्रतिशत थाइमोल घोल के 3 मिली. प्रति मौनग्रह में प्रयोग करना चाहिये।

मधुमक्खियों को पीड़कनाशियों से बचाने के उपाय

- कीटनाशकों का छिड़काव शाम के समय करना चाहिए क्योंकि इस समय मधुमक्खियां पुष्पों पर भ्रमण नहीं करती हैं।

- फसलों में पीड़कनाशियों के छिड़काव के समय मधुमक्खियों के छत्तों के प्रवेश द्वारों को बंद कर देना चाहिए। यदि सम्भव हो तो छत्तों को अस्थाई रूप से स्थानान्तरित करें। यदि स्थानान्तरण सम्भव न हो तो शर्करा का घोल भोजन के रूप में उपलब्ध करना चाहिए।
- फसलों में पीड़क कीटों के प्रबंधन हेतु कम विषाक्त एवं अनुशंसित रसायनों/पीड़कनाशियों का सुरक्षित प्रयोग करें जो मधुमक्खियों के लिए कम हानिकारक हों।
- कीटनाशकों के धूलि संरूपणों (फार्मुलेशन) की अपेक्षा द्रवीय संरूपणों का प्रयोग मधुमक्खियों के लिए सुरक्षित होता है।
- मधुमक्खियों एवं अन्य परागणकर्ता कीटों पर कीटनाशकों का विषैला प्रभाव पड़ता है। फसल संरक्षण के अंतर्गत एकीकृत कीट व रोग प्रबंधन में चयनित कीटनाशकों का प्रयोग मधुमक्खियों एवं परागण करने वाले कीटों के लिए सुरक्षित होना चाहिए। इस सन्दर्भ में ऐसे कीटनाशकों का चुनाव करें जो मधुमक्खियों एवं अन्य परागण करने वाले कीटों को कम हानि पहुंचाएं।
- वैज्ञानिक ढंग से मधुमक्खी पालन करने से कॉलोनियां स्वस्थ रहेंगी जिससे शहद, प्रोपोलिस, मोम व अन्य उत्पादों से अधिक आय प्राप्त होगी। इसके साथ साथ फसलों की उपज व गुणवत्ता बढ़ाने में भी मदद मिलेगी।

भारत के मृदा एवं जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

अनिल कुमार मिश्रा, नीता द्विवेदी एवं मान सिंह

जल प्रौद्योगिकी केंद्र

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली – 110012

देश विदेश के वैज्ञानिक अनुसंधानों, प्रयोगों, परीक्षणों और गहन अध्ययन के पश्चात यह सिद्ध किया जा चुका है कि जलवायु परिवर्तन एक सच्चाई है। आज–कल हमारी पृथ्वी जलवायु परिवर्तन के कठिन दौर से गुजर रही है। जलवायु परिवर्तन न केवल भारत बल्कि पूरी दुनिया के लिए चुनौती है। जलवायु परिवर्तन हम समस्त पृथ्वी वासियों के द्वारा समवेत रूप से संसाधनों के दोहन, जंगलों की गहन कटाई, विभिन्न प्रकार से वारावरण को प्रदूषित करने वाले क्रिया–कलापों का सम्मिलित दुष्परिणाम है। जलवायु परिवर्तन अनुकूलन एक बहुत ही जटिल कार्य है। मृदा, भूमि और जल संसाधन का समन्वित प्रबंधन जलवायु परिवर्तन उस से भी अधिक चुनौतीपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन की सच्चाई को स्वीकार करते हुएय जलवायु परिवर्तन अनुकूलन हेतु मृदा, भूमि एवं जल संसाधनों के समन्वित उपयोग, मृदा अपरदन की रोकथाम, मृदा, भूमि और जल संसाधनों के उत्तम उपयोग और प्रबंधन, बाढ़–सूखा तथा आपदा नियन्यत्रण हेतु इत्यादि की योजनाबद्ध रूप से कार्य करने की आवश्यकता है। संसाधनों के उचित एवं दक्षतापूर्ण प्रबंधन हेतु मृदा, भूमि एवं जल संसाधनों पर कैसे ध्यान दिया जाना चाहिए इस लेख का प्रमुख उद्देश्य है। मृदा अपरदन को रोक कर, मृदा स्वाथ्य सुधार की विभिन्न प्रविधियों को अपनाने सेय विभिन्न प्रकार के जंगलों का परिरक्षण कर के, पृथ्वी की हरीतिमा आच्छादित क्षेत्रों वें वृद्धि कर के, जल प्रदूषण में आशातीत कमी कर के, एक प्राकृतिक संतुलन लाया जा सकता है। जो जलवायु परिवर्तन के विभिन्न नकारात्मक प्रभावों से इस पृथ्वी और इसके जीव जंतुओं के भविष्य को सुरक्षित कर सकता है।

खेती, पशुपालन, उद्योगों और अन्य सभी जीवित प्राणियों के लिए सबसे महत्वपूर्ण आदानों में से एक है जल। लेकिन इसकी स्थानिक और लौकिक भिन्नता के कारण, इसकी उपलब्धता, पहुंच और सामर्थ्य जल उपयोगकर्ताओं और जल प्रबंधकों/योजनाकारों के लिए एक बड़ी चुनौती है। जलवायु में परिवर्तन के कारण समस्या और अधिक तीव्र हो जाती है, जिसे अब अधिक गंभीर रूप से देखा जा रहा है (हेल्त्बर्ग, और अन्य, 2008)। जलवायु परिवर्तन अनुकूलन के निर्णय प्राकृतिक अपवाह के आकलन के आधार पर नहीं किए जाते हैं, बल्कि इसके आकलन से प्राप्त होते हैं कि कैसे जल विज्ञान के साथ मानव बातचीत अर्थव्यवस्थाओं और पारिस्थितिक तंत्रों के लिए सकारात्मक या नकारात्मक परिणाम उत्पन्न करती है (पीबीएल पर्यावरण आकलन एजेंसी (2018), जिस पर मानव समुदाय निर्भर करते हैं। उपलब्ध विश्लेषणात्मक उपकरणों में इन पहलुओं को उत्तम ढंग से पालने की आवश्यकता है।

भूमि और जल संसाधन हमारे पारिस्थितिकीय तंत्र का बहुत महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग हैं। यह न केवल मनुष्य के लिए जीवन का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं, बल्कि यह कृषि, पशुधन, उद्योगों और पर्यावरण का भी पोषण करता है। प्रति व्यक्ति भूमि और जल संसाधन की उपलब्धता में गिरावट, विभिन्न उपयोगों और उपयोगकर्ताओं के लिए जल की मांग को प्रतिस्पर्धा, खाद्य आदतों और जीवन शैली, आजीविका और सामाजिक आर्थिक परिदृश्यों को बदलना, जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय आवश्यकताओं को भूमि और जल संसाधनों के समग्र प्रबंधन के लिए तैयार करना भविष्य में होने वाली घटनाओं के लिए स्वयं को तैयार रखने जैसा है। जल को एक अलग इकाई के रूप में नहीं माना जा सकता है, बल्कि यह पारिस्थितिकी तंत्र का एक अभिन्न अंग है और इसे समन्वित दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक हितधारक का ध्यान रखने की आवश्यकता है। भूमि और जल संसाधनों के सतत विकास और प्रबंधन के लिए इसे भौतिक, आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरण, तकनीकी, वैज्ञानिक,

कार्यकर्ता, संस्थागत, प्रशासनिक, राजनीतिक और कानूनी कोणों से देखा जाना चाहिए।

विगत कुछ वर्षों में अचानक से आया हुया वातावरण चक्रीय परिवर्तन, हवा का विक्षोभ, तापमान में अचानक परिवर्तन, वर्षा की अनियमितता, अंधड़ और बिना मौसैम वर्षा अथवा ओलावृष्टि इत्यादि नहीं है परन्तु यह बड़े समय के साथ होता हुआ चक्र है। हम इसे जलवायु परिवर्तन कह सकते हैं। जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए उचित रणनीति बनाने की जरूरत है, खासकर बाढ़, सूखा, चक्रवात जैसी गंभीर घटनाओं, फसल के विकास के महत्वपूर्ण चरणों में जब जल की कमी या पौधों की जड़ क्षेत्र में अतिरिक्त जल और जड़ों और पौधों के क्षय के कारण बनाती है। भारत के मृदा एवं भूमि और जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन प्रभाव तथा इनके अनुकूलन हेतु समन्वित अथवा एकीकृत भूमि और जल संसाधन संरक्षण एवं संवर्धन की महती आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन का मुकाबला करने के लिए, किसानों के संकट को कम करने के लिए विभिन्न देशों की सरकारों के द्वारा उपयुक्त नीतियों के निर्माण और समय पर कार्यान्वयन की तत्काल आवश्यकता है इसके अलावा जलवायु परिवर्तन, प्रतिकूल प्रभाव और संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए संभावित कार्यान्वयन रणनीतियों के बारे में भी चर्चा है की गयी है।

भूमि और जल संसाधन में कुप्रबंधन

सामान्य तौर पर भूमि और जल संसाधन निम्न प्रकार के कुप्रबंधन के अधीन हो गए हैं:

1. पुनर्जीवन के लिए कम क्षमता वाली नदियों से अधिक जल की निकासी।
2. अतिरिक्त भूजल निकासी के कारण जल की कमी और भूजल की गुणवत्ता में गिरावट, तटीय जलभरों में समुद्री जल घुसपैठ, आर्सेनिक प्रदूषण आदि।
3. जल और लवणता के परिणामस्वरूप कुप्रबंधित सिंचाई प्रणाली।
4. अनुपचारित अपशिष्ट जल को धाराओं और जलभृतों और फसलों में इसके अनुप्रयोग के निपटान के परिणामस्वरूप, भूमि और जल का क्षरण होता है, जिससे स्वास्थ्य को खतरा होता है।

समन्वित भूमि और जल संसाधन प्रबंधन

समन्वित भूमि और जल संसाधन प्रबंधन को भूमि, जल और अन्य संसाधनों की दीर्घकालिक स्थिरता को ध्यान में रखते हुए भूमि और जल संसाधनों के नियमित विकास और प्रबंधन के साथ–साथ कुशल, न्यायसंगत और समन्वित हैंडलिंग और विवेकपूर्ण उपयोग के रूप में परिभाषित किया गया है। जलवायु परिवर्तन से निपटने और प्राकृतिक संसाधनों विशेषकर भूमि और भूमि और जल संसाधनों के साथ–साथ मानव और पशुधन संसाधनों पर इसके प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए, एक रणनीतिक योजना तैयार करने की तत्काल आवश्यकता है जिसमें निम्नलिखित बिंदुओं को शामिल किया जाना चाहिए।

समन्वित भूमि और जल संसाधन प्रबंधन की अवधारणा

संयुक्त और समन्वित संसाधनों का उपयोग एकल संसाधनों की तुलना में अन्य संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव के बिना गुणवत्ता और मात्रा दोनों के मामले में कई गुना उत्तम संचयी प्रभाव पैदा करता है।

समन्वित भूमि और जल संसाधनों के प्रभाव का उपयोग और संयोजन

भूमि और जल संसाधनों के संकलन, संरक्षण एवं संवर्धन की योजना, अनुरेखन, विकास और प्रबंधन इसकी स्थानिक और आंकिक भिन्नता पर निर्भर करता है। ऐसा करते समय प्राकृतिक, सामाजिक, भौतिक, वित्तीय और मानवीय पूंजी के साथ–साथ देश में उपलब्ध सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक स्थितियों पर विचार करना भी महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, आजीविका में सुधार के साथ उत्तम कृषि उत्पादन के साथ सीमित भूमि और जल संसाधनों का उपयोग और बाजारों तक उत्तम पहुँच, मृदा संरक्षण की विभिन्न तकनीकों के माध्यम से मृदा अपरदन को नियंत्रित करना और मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखना, कृषि और अन्य सेवाओं में युवाओं को शामिल करके बेरोजगारी में कमी, स्वयं सहायता समूहों व गतिविधि आधारित रुचि समूहों व जल उपयोगकर्ता संघों का निर्माण, उत्तम भूमि

और जल संसाधनों के उपयोग के लिए बुनियादी ढांचे का निर्माण, मृदा, भूमि एवं जल संसाधनों के उत्तम उपयोग के बारे में प्रशिक्षण और जागरूकता अभियान, बाढ़, सूखे और अन्य आपदा नियंत्रण व प्रबंधन पर संचार उत्पादों का विकास करना संकट को कम करना और विश्वसनीयता बढ़ाना, महिलाओं की भागीदारी और उनका सशक्तीकरण, प्रमुख चुनौतियों पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता हो सकती है।

समन्वित भूमि और जल संसाधनों के प्रभाव का उपयोग और संयोजन के लिए सहभागी दृष्टिकोण

उच्च जल उत्पादकता को प्राप्त करने के लिए भौतिक, तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरण, हाइड्रोलॉजिकल, संस्थागत, प्रशासनिक, राजनीतिक, कानूनी और वित्तीय मुद्दों को संबोधित करने के लिए एक समन्वित दृष्टिकोण भी समन्वित भूमि और जल संसाधन प्रबंधन का हिस्सा होना चाहिए। जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन के लिए समन्वित भूमि और जल संसाधनों के प्रभाव का उपयोग और संयोजन की पूरी प्रक्रिया में विभिन्न स्तरों पर जागरूकता पैदा करने, भागीदारी के दृष्टिकोण को अपनाने, विभिन्न चरणों में विभिन्न विभागों के विभिन्न विशेषज्ञों सहित सभी संबंधित हितधारकों से सलाह लेने की अनदेखी नहीं की जा सकती है। समन्वित भूमि और जल संसाधनों के प्रभाव का उपयोग और संयोजन प्राप्त करने के लिए संबोधित किए जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे हैं

(क) विभिन्न हितधारकों के बीच समन्वय,

(ख) विभिन्न भूमि और जल संसाधन प्रबंधकों और उपयोगकर्ताओं के बीच लगातार संवाद, चर्चा और उत्तम संबंध,

(ग) सतही जल, भूजल और खेत के जल संसाधन, उपलब्धता, पहुंच, अपनाने की क्षमता और आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वर्षा जल का कुशल, विवेकपूर्ण और समान उपयोग और प्रबंधन

(घ) जल उत्पादकता बढ़ाने के लिए जल के कई उपयोग, और

(च) वर्षा, सतह, भूमि और जल संसाधनों के संयोजन का उपयोग और तालाबों, झीलों, नदियों या किसी भी अन्य जल संग्रहण संरचना में कोई अन्य संग्रहित जल।

जलवायु परिवर्तन प्रभाव और अनुकूलन रणनीतियाँ

ग्लोबल वार्मिंग बहुत महत्वपूर्ण घटना है, जिसका असर हाल के वर्षों में सभी को महसूस हो रहा है। यह शहरी और कृषि जल आपूर्ति, वनस्पतियों, जीवों और जलीय प्रणालियों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रही है, बाढ़ में अधिक संकट और अनिश्चितताओं को बढ़ाता है और इन घटनाओं और भूमि और जल संसाधनों के प्रबंधन के साथ–साथ इन अनिश्चित घटनाओं के खिलाफ समय पर सुरक्षा प्रदान करने के लिए और अधिक चुनौतियां देता है। तापमान में अचानक बदलाव हो रहा है। कुछ स्थानों पर, तापमान का रुझान अधिक शीतलन की ओर होता है जबकि अन्य स्थानों पर रुझान अधिक गर्म होने की ओर होता है। तापमान का रुझान भी स्थान से स्थान पर स्थानांतरित हो रहा है यानी कभी–कभी जल्दी ठंडा होने और कभी–कभी जल्दी गर्म होने के लिए। बदलते तापमान के रुझान के कारण, स्नोकैप पिघलने के रुझान भी बदल रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप समुद्र के जल स्तर में वृद्धि के साथ–साथ सीमा, अवधि और बाढ़ की आवृत्ति में भी परिवर्तन होता है। ये सभी घटनाएं भूमि और जल संसाधन प्रबंधन की अधिक जटिल समस्या पैदा करती हैं। कृषि अपशिष्ट या पशुधन या गैर–कृषि कचरे के अपघटन से विभिन्न प्रकार की गैसों विशेष रूप से कार्बन–डायऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, ओजोन, सीएफसी और अन्य हालोकार्बन के उत्सर्जन के अलावा यह पर्यावरण और जल प्रदूषण का एक प्रमुख स्रोत भी है। यह भी महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक है और संबंधित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के संयुक्त प्रयासों से इसे संबोधित करने की आवश्यकता है। नई दिल्ली स्थित भा.कृ.अनु.प. ने अपनी "निक्रा" परियोजना के क्रियान्वयन के द्वारा भारत के जलवायु परिवतन सहिष्णुताशील क्षेत्रों में जलवायु समुथानशील प्रविधिओं के क्रियान्वयन का कार्य कर रहा है और इस में उन्हें आशातीत सफलता भी अर्जित हुयी है।

सूखा या कम जल आपूर्ति प्रबंधन रणनीतियाँ

अब 30 दिनों से अधिक के पिछले दिनों के रिकॉर्ड बहुत प्रासंगिक नहीं हैं क्योंकि हाल के दिनों में (विशेषकर 10 वर्षों के भीतर) जलवायु (विशेषकर तापमान और वर्षा) बहुत तेज गति से बदल गई है। सूखे की तीव्रता, तीव्रता, अवधि और वितरण की आवृत्ति हाल के वर्षों में बढ़ी है जिसके परिणामस्वरूप ग्लोबल वार्मिंग और अंततः प्राकृतिक, भौतिक, मानव, पशुधन, कृषि और जैव–विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। विस्तारित सूखा आगे कृषि, मानव और पशुधन संसाधनों के लिए जल की उपलब्धता की और अधिक गंभीर समस्याएं पैदा करेगा। कुछ स्थानों पर उच्च तीव्रता कम अवधि की वर्षा की घटनाओं के परिणामस्वरूप उच्च अपवाह और अंतःस्यंदन कम होती है, जिसके परिणामस्वरूप संपत्ति और अन्य संसाधनों को अधिक नुकसान होता है और कृषि मानव और पशुधन संसाधनों के लिए जल की कम उपलब्धता होती है । दुनिया भर में जलवायु विशेष रूप से वर्षा और तापमान की स्थानिक और लौकिक भिन्नता को ध्यान में रखते हुए, स्थान या साइट विशिष्ट समाधान विकसित करना आवश्यक है। ये समाधान सामाजिक रूप से स्वीकार्य, आर्थिक रूप से व्यवहार्य, पर्यावरण के अनुकूल और हानिरहित, सरल, ध्वनि, टिकाऊ, आसानी से और प्रभावी रूप से लागू होने योग्य होने चाहिए। सहभागिता मोड में हस्तक्षेप/प्रौद्योगिकियों/रणनीतियों/समाधानों को लागू किया जाना चाहिए ताकि जनता जागरूक हो और जनता का पूर्ण सहयोग हो। सूखे से निपटने के लिए, तालाब, डोबा, झीलों, नदियों, जलाशयों या जमीन की सतह के नीचे की सतह के जल भंडारण संरचनाओं में जल को प्रभावी ढंग से जमा करना आवश्यक है और वाष्पीकरण को कम करने के लिए यथासंभव प्रयास किए जाने चाहिए। इस हेतु निम्न विन्दु महत्वपूर्ण हैं:

- एक ही समय में कई स्थानों पर छोटे पैमाने पर जल भंडारण सुविधाओं में वृद्धि करके और प्राकृतिक या कृत्रिम तरीकों से भूजल पुनर्भरण को अधिक कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से बढ़ाकर अपवाह को कम करने की पहल की जानी चाहिए।
- जल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में होने वाले घाटे को कम करके जल संवहन दक्षता को बढ़ाया जाना चाहिए। यह ईंट, सीमेंट, कोलतार, प्लास्टिक शीट (250 माइक्रोन मोटी एलडीपीई फिल्म) जैसी विभिन्न उपलब्ध सामग्रियों वाले चौनलों के अस्तर द्वारा किया जा सकता है।
- यदि यह तकनीकी रूप से कुशल व्यक्ति के द्वारा सावधानी के साथ संयुक्त और ठीक से तय किया जाता है, तो जल की कमी को बहुत हद तक कम किया जा सकेगा। जल के आवेदन (प्रयोग) की दक्षता को सीधे उस जगह पर जल लागू करके बढ़ाया जा सकता है जहां इसकी आवश्यकता होती है।
- इस प्रचालक को बढ़ाया भी जा सकता है, यदि आवश्यक होने पर उस समय जल लगाया जाता है और मात्रा में जिसमें संशोधित बेसिन, चेक बेसिन, फिरोज या उठाया बेड फरो की मदद से आवश्यक हो, स्प्रिंकलर, ड्रिप, कम जैसी दबाव वाली सिंचाई प्रणाली ऊर्जा जल अनुप्रयोग प्रणाली, सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली आदि।
- इन प्रणालियों का अनुप्रयोग स्थान, आकार और क्षेत्र, ढलान, फसल, जल के स्रोत और इसकी उपलब्धता, किसानों द्वारा ऊर्जा और उपलब्धता आदि पर निर्भर करता है।
- जल संग्रहण दक्षता में वृद्धि भी है। आवश्यक है, जो इसके उपयोग और न्यूनतम अपव्यय के लिए फसल द्वारा अधिकतम उपयोग पर निर्भर करता है। इसलिए यह आवश्यक है कि केवल फसल रूट जोन में जल लागू किया जाए और इसे फसल द्वारा उपयोग के लिए मिट्टी प्रोफाइल में संग्रहीत किया जाए।
- फसल के लिए जल का एक समान अनुप्रयोग भी बहुत महत्वपूर्ण है ताकि प्रत्येक और हर पौधे को अपने विकास के लिए जल का उपयोग करने का समान अवसर मिले।

सूखा सहिष्णुता

सूखे या जल की कमी की स्थिति के दौरान, जल प्रबंधन का मूल उद्देश्य जल उत्पादकता में सुधार करना है, जो कि समय पर कम जल प्रदान करके, अर्थात, महत्वपूर्ण

फसल विकास चरणों के दौरान और बिना उपज को कम किए बिना उत्तम बनाया जा सकता है। वर्षा, सतही और भूमि और जल संसाधनों का ठोस उपयोग एक और बहुत महत्वपूर्ण तकनीक है जो फसल को जल की भुखमरी से बचा सकती है और सूखे या सूखे जैसी स्थिति से उबार सकती है। दक्षिणी भारत के टैंक सिंचन तंत्र से तो सभी पूर्व परिचित हैं। पूर्वी भारत में, विशेष रूप से बिहार में पुराना पारंपरिक आहार (जल भंडारण संरचना) और पाइन (जल भण्डारण के साथ–साथ सिंचाई चैनल) प्रणाली है, जो वास्तव में सूखे के खिलाफ लड़ने के लिए अच्छी तरह से स्थापित प्रणाली थी लेकिन अब इस के नियमित रख–रखाव के अभाव में उनमें से केवल कुछ ही कार्यात्मक हैं। सूखे की स्थिति में कुशलता से जल का उपयोग करने के लिए अहर–पायने प्रणाली को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार दक्षिणी भारत में टैंकों द्वारा सिंचाई की बृहद प्रणाली स्थापित थी जिसे भी पुनर्जीवित करने की बहुत आवश्यकता है। हालांकि वर्षा के दौरान सूखा व अल्प वर्षा बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि जहाँ भी कम वर्षा होती है, उसका सही उपयोग किया जाना चाहिए और वर्षा जल की दक्षता को बढ़ाने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए। इसे प्राप्त करने के लिए, यदि धान के खेतों के चारों ओर 20–25 सेमी की ऊंचाई वाले डाइक बनाए जाते हैं। लगभग 90–95% वर्षा धान के खेतों में संग्रहीत की जा सकती है और फसल उत्पादन के लिए उपयोग की जा सकती है। डाइक के निर्माण से न केवल भूजल का पुनर्भरण होगा, बल्कि यह धान के खेतों से अपवाह और मिट्टी के नुकसान को कम करेगा।

भूमि और जल संसाधनों की सटीक योजना और प्रबंधन

अब इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि अपेक्षित जलवायु परिवर्तन प्रभावों को समन्वित भूमि और जल संसाधन प्रबंधन और नई परियोजनाओं के डिजाइन, विशेष रूप से जल उपलब्धता और जल आपूर्ति परिदृश्यों पर विचार किया जाना चाहिए, अर्थात (वर्षा, अपवाह, वाष्पीकरण, भंडारण, छिद्रण से युक्त संपूर्ण जल विज्ञान चक्र) आदि। बाढ़ और सूखा मूल रूप से स्थैतिक घटना है और नियतात्मक नहीं है, इसलिए वर्षा और बाढ़ और सूखा भी स्थान और समय के साथ भिन्न होते हैं। तदनुसार, भूमि और जल संसाधनों का संचालन विशेष रूप से जारी, आवंटन, वितरण और उपयोग प्रभावित होगा। बाढ़ और सूखा संरक्षण कार्यों की तरह कुछ रणनीतियों को आगे बढ़ाकर बाढ़ और सूखे के प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सकता है। बाढ़ और सूखे से निपटने की परियोजनाओं की योजना बनाते समय, स्थानीय व्यक्तियों के विचारों, योजनाओं तथा उनके अनुभव बहुत मूल्यवान होते हैं और यदि सकारात्मक रूप से विचार किया जाए तो यह काफी लाभदायक हो सकता है।जब संकट और अनिश्चितता में वृद्धि होती है, और जल की उपलब्धता या तो सीमित होती है या काफी मात्रा में होती है, तो दोनों ही स्थितियों में जल के उपयोगकर्ताओं और जल के आपूर्तिकर्ताओं के बीच जल टकराव की स्थिति पैदा हो जाती है। लेकिन लगातार संवाद और चर्चा से लोगों को उत्तम आपसी समझ मिलती है। यह संघर्षों के मुद्दों और कारणों को महसूस करने में मदद करता है और इन संघर्षों को काफी हद तक कम करता है, अंततः जल उपयोग दक्षता में वृद्धि के लिए सहायक और अग्रणी सिद्ध होता है।

भूमि और जल संसाधनों के समन्वित प्रबंधन हेतु नीति निर्माण की अपरिहार्यता

नई भूमि और जल संसाधन परियोजनाओं को डिजाइन करते समय इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए। भूमि और जल संसाधनों की योजना और प्रबंधन क्षेत्रीय आधार पर किया जाना चाहिए। इसमें न केवल बाढ़ नियंत्रण और बाढ़ सुरक्षा कार्य शामिल हैं, बल्कि संपूर्ण जल विज्ञान चक्र प्रणाली भी शामिल हैं। इसमें जलग्रहण, जलग्रहण, अपवाह, जलाशयों में भंडारण, जलाशय संचालन और नहर नेटवर्क के माध्यम से आनुपातिक जल वितरण (शाखा नहर, वितरिकाएँ, उप वितरिकाएँ, आउटलेट्स और फील्ड चौनल) और जल उपयोगकर्ताओं की भागीदारी शामिल है। जनता को यह महसूस करना होगा कि कुछ जल आवश्यक रूप से पारिस्थितिकी तंत्र, पक्षियों, वनस्पतियों और नदियों में न्यूनतम प्रवाह बनाए रखने के लिए आवश्यक है। सड़कों के बीच या सड़कों के किनारे वृक्षारोपण शहरी क्षेत्रों में तापमान को कम करने में मदद करता है। जब ऊपरी वाटरशेड में वन लगाए जाते हैं, तो यह प्रक्रिया अपवाह

और मिट्टी के कटाव को कम करती है और भूजल पुनर्भरण को बढ़ाती है। कटे हुए भूमि प्रबंधन को औषधीय और सुगंधित पौधों को लगाकर किया जा सकता है, जिससे भूमि उत्पादकता में वृद्धि होगी। इसी प्रकार, नहरों या कम जमीनों के किनारे, सतही जल–जमाव वाले क्षेत्रों, गीली या दलदली भूमि की भूमि और जल उत्पादकता को धान, कमलककडी, सिंघाड़ा आदि जैसे मछली या जल से प्यार करने वाले या सहिष्णु हार्डी फसलों को पाला जा सकता है। यह मनुष्यों सहित निवासों का पुनर्वास करने और बाढ़ या सूखा प्रभावित क्षेत्रों के पशुधन के लिए भी आवश्यक है।

1. मनुष्य, पशुधन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए बाढ़ और सूखा बीमा पॉलिसी और आपातकालीन अग्रिम योजना विकसित करना। यह अनिवार्य रूप से पूरे पारिस्थितिक तंत्र पर इन घटनाओं के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए, प्रतिकूल परिस्थितियों में मरम्मत और बनाए रखने वाले संसाधनों, बचाव कार्यों, जागरूकता योजनाओं, प्रबंधन नीति को बनाए रखने के लिए तंत्र को शामिल करना चाहिए।

2. सूखे से निपटने के लिए, चारों ओर छोटे आकार के कई निचले क्षेत्रों को डाइक्स से पहले से पहचाना जाना चाहिए, ताकि कम अवधि की उच्च तीव्रता की वर्षा के परिणामस्वरूप अतिरिक्त अपवाह को कैप्चर किया जा सके और भविष्य में उपयोग के लिए संग्रहीत किया जा सके। इसी तरह बाढ़ के दौरान, निचले इलाकों में जल को पकड़ने या एकत्रित करने के लिए पहली प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिसमें आसपास भूजल भंडारण अधिक होता है।

3. अर्ली वार्निंग सिस्टम के साथ–साथ कमांड क्षेत्र में फसल जल की आवश्यकता से प्राप्त जानकारी को जलाशयों, बैराज और नहरों के पूरे नेटवर्क के संचालन में प्रभावी रूप से उपयोग किया जाना चाहिए।

4. जलाशयों, बैराज और नहर के जल की रखरखाव एक सतत प्रक्रिया है। इसे समय पर किया जाना चाहिए और पूरे सिंचाई प्रणाली के रखरखाव के लिए धन की कोई कमी नहीं होनी चाहिए। इसलिए पूरे सिंचाई प्रणाली की निगरानी किसी भी कीमत पर उपेक्षित नहीं होनी चाहिए।

5. पूरी प्रक्रिया में स्थानीय जनता की भागीदारी, उनके मूल्यवान अनुभवों और सुझावों पर विचार किया जाना चाहिए क्योंकि वे प्रणाली से निपटते हैं और किसी से उत्तम जानते हैं।

6. जल की गुणवत्ता एक और महत्वपूर्ण मुद्दा है, क्योंकि जलवायु परिवर्तन वर्षा, अपवाह, और तापमान की मात्रा, तीव्रता, अवधि और वितरण को प्रभावित करेगा, जिससे तलछट, प्रदूषक, रोगजनकों और कीटनाशकों आदि का उत्पादन होगा और समुद्र का जल स्तर प्रभावित होगा। और अधिक समुद्री जल घुसपैठ अंततः पीने और घरेलू उद्देश्य के लिए कम ताजे जल की उपलब्धता और पहुंच के परिणामस्वरूप। इस मुद्दे पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है और इसे प्रभावी ढंग से संबोधित किया जाना चाहिए।

7. जल के पुनः उपयोग और पुर्नचक्रण के अवसरों को संभव सीमा तक खोजा जाना चाहिए क्योंकि यह जल के कई उपयोगों को बढ़ावा देता है और जल की उत्पादकता में सुधार करता है। यह बाढ़ और सूखे से निपटने में भी प्रभावी है।

8. विभिन्न अनुपातों में अच्छी गुणवत्ता के जल के साथ खराब गुणवत्ता वाले जल के समुचित उपयोग से फसल की वृद्धि और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी तरह, वर्षा, सतह और भूजल का संयोजन और विभिन्न फसल विकास चरणों में जल का उपयोग जब अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है तो फसल की उपज बढ़ाने और बाढ़ और सूखे के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने में भी बहुत प्रभावी होता है।

सोयाबीन की अधिक पैदावार के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियाँ

गोपाल लाल चौधरी[1], कैलाश प्रजापत[2], कुलदीप सिंह राणा[3] एवं राम स्वरूप बाना[3]

[1]सस्य विज्ञान विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर–813210

[2]भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001

[3]सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

भारत में उगायी जाने वाली तिलहनी फसलों में सोयाबीन सबसे महत्वपूर्ण फसल है। हमारे देश में कुल तिलहन क्षेत्रफल का 45 प्रतिशत एवं उत्पादन का 42 प्रतिशत सोयाबीन के अर्न्तगत आता है। इसके दानों में 42 प्रतिशत प्रोटीन एवं 20 प्रतिशत तेल होता है। आहार की पोष्टिकता बढ़ाने के लिये आहार में सोयाबीन का मिश्रण किया जाता है। गेंहूँ के आटे की गुणवता बढ़ाने के लिए इसमें सोयाबीन का आटा मिलाया जा सकता है। सोयाबीन से दूध बनाया जाता है एवं इसके दूध से दही व मक्खन बनाया जा सकता है। सोया दूध रासायनिक विश्लेषण की दृष्टि से गाय के दूध के तुल्य होता है। इसके तेल का उपयोग वनस्पति घी बनाने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त पेन्ट, वार्निश, साबुन, स्याही, रबर, ग्लीसरिन आदि उद्योगों में भी इसके तेल का उपयोग किया जाता है।

सोयाबीन की जड़ों में मौजूद राइजोबियम नामक जीवाणु वायुमण्डलीय नत्रजन का स्थिरीकरण करके भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं जिससे भूमि की उत्पादक क्षमता बनी रहती है। नत्रजन स्थिरीकरण क्षमता के कारण सोयाबीन के बाद बोयी जाने वाली फसल में 25 से 50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नत्रजन की बचत की जा सकती है। मध्य प्रदेश राज्य भारत के कुल सोयाबीन क्षेत्रफल एवं उत्पादन में 50 प्रतिशत से अधिक योगदान करता है। अन्य प्रमुख उत्पादक राज्य महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक एवं आंध्र प्रदेश है। हमारे देश में वर्तमान में केवल 0.7 प्रतिशत सोयाबीन ही सिंचित अवस्था में उगायी जाती है एवं बाकी 99.3 प्रतिशत बारानी दशाओं में उगायी जा रही है जिससे इसकी औसत उत्पादकता काफी कम है। सोयाबीन की कम एवं अस्थिर उत्पादकता के अन्य कारण कम उपजाऊ भूमि पर खेती, अनुपयुक्त किस्मों का चयन, असंतुलित उर्वरक प्रयोग एवं पादप रोग व कीटों की पर्याप्त रोकथाम न करना, आदि हैं। फसल की कम उत्पादकता से किसानों की आर्थिक स्थिति काफी हद तक प्रभावित होती है। इस परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक है कि अधिक उत्पादकता के लिए उन्नतशील सस्य विधियाँ अपनाकर इस फसल की खेती की जाये।

खेत का चुनाव व तैयारी

सोयाबीन की फसल को वैसे तो विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है परन्तु, भरपूर उपज के लिए समतल एवं अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है एवं मृदा क्षारीयता से मुक्त होनी चाहिए। लवणीय मृदा में फसल उपज ज्यादा प्रभावित नहीं होती है जबकि उपयुक्त प्रबंधन द्वारा क्षारीय भूमि में भी इसकी खेती की जा सकती है। जहाँ की मृदा क्षारीयता से प्रभावित हो वहां प्रति तीसरे वर्ष जिप्सम 5 टन प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए। जिप्सम की आवश्यकता मृदा पी.एच. मान के अनुसार भिन्न हो सकती है। जिप्सम को मई–जून माह में जमीन में मिला देना चाहिए। सोयाबीन की खेती प्रमुखतया बारानी दशाओं में की जाती है। खेत की तैयारी के लिए मानसून की पहली बरसात के साथ मिट्टी पलटने वाले हल से एक गहरी जुताई करें और उसके बाद दो–तीन जुताईयां तवेदार हल से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद खेत में पाटा लगाना चाहिए जिससे खेत में नमी संरक्षित रहें एवं बडे आकार के ढेलों को तोड़ा जा सकें। जिन क्षेत्रों में वर्षा बहुत कम हो वहां गर्मी में एक गहरी जुताई करे जिससे नमी का संरक्षण हो सके एवं मानसून की पहली बरसात होने पर कम से कम जुताई के साथ फसल की बुवाई करें।

उन्नत किस्में

तालिका 1. विभिन्न क्षेत्रों एवं राज्यों के लिए सोयाबीन की उपयुक्त किस्में

	क्षेत्र/राज्य	उन्नत किस्में
1.	उत्तरी पहाड़ी क्षेत्र – हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड	पूसा 16, वी.एल.सोया 2, शिलाजीत, वी.एल.सोया 47, हरा सोया, पालम सोया, पंजाब 1, पी.एस. 1241, पी.एस. 1092, पी.एस. 1347, वी.एल.एस. 59, वी.एल.एस. 63
2.	उत्तरी मैदानी क्षेत्र – पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार	पी.के. 416, पूसा 16, डी.एस. 9712, डी.एस. 9814, पी.एस. 564, एस.एल. 295, एस.एल. 525, पंजाब 1, पी.एस. 1024, पी.एस. 1042, पी. एस. 1024, पी.एस. 1241, पी.एस. 1347
3.	मध्य भारत क्षेत्र – मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, उत्तरी महाराष्ट्र	जे.एस. 335, जे.एस. 93–05, जे.एस. 95–60, जे.एस. 97–52, जे.एस. 71–05, जे.एस. 80–21, एन.आर.सी. 7, एन.आर.सी. 37, समृद्धि, एम.ए.यू.एस. 81
4.	दक्षिणी भारत क्षेत्र – दक्षिणी महाराष्ट्र, कर्नाटक, तामिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश	पंत सोया 1029, प्रतिकार, को 1, को 2, एम.ए.सी.एस. 24, पूजा, के.एच.एस.बी. 2, एल.एस. बी.1, फूले कल्याणी, प्रसाद
5.	उत्तर पूर्वी क्षेत्र – बंगाल, छत्तीसगढ़, उतराखंड, उड़ीसा, आसाम, मेघालय	बिरसा सोयाबीन 1, इंदिरा सोया 9, प्रताप सोया 9, एम.ए.यू.एस. 71, जे. एस. 80–21

बुवाई का समय

बारानी क्षेत्रों में उगाई जाने वाली सोयाबीन में बुवाई का समय फसल उत्पादकता एवं उत्पादन को बहुत अधिक प्रभावित करता है। अतः फसल की बुवाई मानसून शुरू होने के साथ ही कर देनी चाहिये। उतरी पहाड़ी क्षेत्रों में सोयाबीन की बुवाई जून के महीनें में, उतरी मैदानी क्षेत्रों, मध्य क्षेत्रों एवं उतर पूर्वी क्षेत्रों में मध्य जून से मध्य जुलाई तक एवं दक्षिणी क्षेत्रों में जून मध्य से जुलाई अंत कर देनी चाहिए।

बीज दर

सोयाबीन की सफल खेती के लिए बीज की उपयुक्त मात्रा होनी चाहिए। सामान्यतया बीज की मात्रा अंकुरण प्रतिशत पर निर्भर करती है यदि बीजों का अंकुरण प्रतिशत कम हो तो बीज की मात्रा उसी हिसाब से बढा देनी चाहिए। बीज का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि बीज ज्यादा पुराना न हो क्योंकि एक साल के बाद इसकी अंकुरण की क्षमता कम हो जाती है। छोटे दानों वाली किस्मों की बीजदर 60 से 65 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर, मध्यम दानों वाली किस्मों की 70 से 75 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर एवं मोटा दाना वाली किस्मों की बीजदर 80 से 85 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर रखनी चाहिए।

बीज उपचार

बीज को बुवाई से पहले उपयुक्त रयायन से उपचारित कर लेना चाहिए। बीजोपचार के लिए 3 ग्राम थाइरम अथवा 2 ग्राम मेन्कोजेब या कार्बेण्डाजिम (बॉविस्टीन) कवकनाशक दवाई प्रति किलो ग्राम बीज की दर से बीजोपचार करने से फसल पर लगने वाले रोगों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। सोयाबीन लेग्युमिनेसी कुल की फसल है अतः बीज को उपयुक्त राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिए। इसके लिए *राइजोबियम जपोनिकम* नामक कल्चर से बीज को 20 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित करें। बीजोपचार करते समय ध्यान रखें की सबसे पहले कवकनाशक फिर आवश्यक हो तो कीटनाशक एवं अंत में राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। बीज को बुवाई के 10 से 12 घंटे पहले राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें एवं छाया में सुखाने के बाद बुवाई के लिए उपयोग में लेवें।

बुवाई

सफल फसल उत्पादन के लिए उचित बीजदर के साथ उचित दूरी पर बुवाई करना आवश्यक होता है। अधिक उत्पादन लेने हेतु एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में लगभग 4–6 लाख पौधे होने चाहिए। अतः उपयुक्त पौधों की संख्या प्राप्त करने के लिए कतार से कतार की दूरी 45 से.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 4–5 से.मी. रखनी चाहिए। बुवाई 3–4 सें.मी. गहराई पर करनी चाहिए। अधिक गहराई से अंकुरित बीज को ऊपर आने में अधिक समय लगता है और पौधों की वृद्धि पर बुरा असर पड़ता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

कार्बनिक खादें : कार्बनिक खादों में पोषक तत्व बहुत कम मात्रा में पाये जाते हैं परन्तु इनके उपयोग से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशाओं में सुधार होता है जिससे मृदा की जल धारण क्षमता एवं उर्वरता में वृद्धि होती है। कार्बनिक खादें पौधों को मुख्य पोषक तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्व भी प्रदान करती हैं। अतः अधिक उपज एवं मृदा की भौतिक दशा में सुधार के लियें 8–10 टन प्रति हेक्टेयर की दर से अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुवाई के एक माह पूर्व खेत में डालकर जुताई कर अच्छी तरह मृदा में मिला दें। गोबर की खाद का उपयोग 3 साल में एक बार अवश्य करना चाहियें।

जैव उर्वरक : जैव उर्वरकों जैसे राइजोबियम, पी. एस. बी., वॉम आदि के उपयोग से फसल उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है। समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन के लिए 20 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से राइजोबियम एवं पी.एस.बी. से बीजोपचार लाभदायक रहता है, इससे नत्रजन एवं फॉस्फोरस की उपलब्ध्ता बढ़ती है व उपज में वृद्धि होती है।

उर्वरकों का उपयोग : फसल उत्पादन में टिकाऊपन के लिए उर्वरकों का संतुलित उपयोग बहुत आवश्यक होता है। संतुलित उर्वरक उपयोग के लिए नियमित मृदा परीक्षण हो एवं मृदा परीक्षण के आधर पर उर्वरकों की मात्रा फसल में दी जावें। लेग्युमिनेसी कुल की फसल होने के कारण सोयाबीन को बहुत कम नत्रजन की आवश्यकता होती है। अतः फसल का अधिक उत्पादन लेनें के लिए 20–25 किलोग्राम नत्रजन, 60–80 किलोग्राम फॉस्फोरस एवं 40–50 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करना चाहिए। उर्वरकों की संपूर्ण मात्रा को बुवाई के पूर्व अंतिम जुताई के समय बीज से लगभग 5 सें.मी. नीचे मृदा में उर कर देवें। तिलहनी फसल होने के कारण सोयाबीन में 20–25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से सल्फर का उपयोग बहुत आवश्यक होता है। अगर फसल में फॉस्फोरस सिंगल सुपर फॉस्फेट से दिया गया हो तो अलग से सल्फर देने की आवश्यकता नहीं है। यदि सिंगल सुपर फॉस्फेट का उपयोग नहीं किया जाना है तो गोबर की खाद डालने के समय 150–200 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से जिप्सम को मिट्टी मिलायें।

फसल से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग अति आवश्यक होता है। जिंक की कमी वाली मृदा में जिंक डालने से करीब 15 से 20 प्रतिशत तक पैदावार में वृद्धि होती है। जिंक की पूर्ति हेतु भूमि में बुवाई से पहले 25 किलोग्राम जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर अकेले या जैविक खाद के साथ प्रयोग किया जा सकता है। अगर खड़ी फसल में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट व 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने (200 लीटर पानी में 1 किलो ग्राम जिंक सल्फेट तथा 0.5 किलो ग्राम बुझे हुए चूने) का घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। लोहा की कमी वाले क्षेत्रों में फसल में जैसे ही इसकी कमी के लक्षण दिखाई दे तो 1 प्रतिशत फैरस सल्फेट (1 लीटर पानी में 10 ग्राम फैरस सल्फेट) का पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। बोरोन की कमी वाली मृदा में बोरेक्स 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से उपयोग करें।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार फसल के साथ जल, पोषक तत्वों, स्थान एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। खरपतवारों के कारण सोयाबीन की उपज में 30–70 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है। सोयाबीन की फसल शुरूआती 30–45 दिनों की अवस्था में खरपतवारों के प्रति संवेदनशील होती है। अतः खरपतवारों को खेत से निकालने और नमी संरक्षण के लिए फसल में दो निराई–गुड़ाई करना लाभदायक रहता है जिनमें पहली बुवाई के 25–30 दिनों एवं दूसरी 40–45 दिनों बाद करनी चाहिए। खरपतवार प्रबंधन के लिए खुरपी एवं खस्सी (हैण्ड हो) का प्रयोग किया जाता है। सोयाबीन में रासायनिक खरपतवार प्रबंधन के लिये फ्लूक्लोरेलिन या ट्राईफ्लूरेलिन की 0.75–1.0 किग्रा./है सक्रिय तत्व की मात्रा बौवाई से ठीक पहले मिट्टी में मिलाए। अगर बुवाई से पहले खरपतवारनाशी का प्रयोग नहीं किया गया हो तो बुवाई से 1–3 दिन के अन्दर पेन्डीमिथैलिन की 1.0 किग्रा./है सक्रिय तत्व की मात्रा को छिड़काव द्वारा अच्छी तरह मिट्टी में मिलाए। खरपतवारनाशी प्रयोग के समय खेत में पर्याप्त नमी होनी आवश्यक है। खड़ी

फसल में घास जाति के खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिये क्यूजालाफॉप इथाइल (5 प्रतिशत ई.सी.) की 40–50 ग्राम/है सक्रिय तत्व की मात्रा बुवाई के 20–25 दिन पर छिड़काव करें। खड़ी फसल में खासकर चौड़ी पत्ती वाले एवं कुछ घास कुल के खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिए इमाजेथापायर (10 प्रतिशत एस.एल.) की 75–100 ग्राम/है सक्रिय तत्व की मात्रा बुवाई के 20–25 दिन पर छिड़काव करें।

जल प्रबंधन

सोयाबीन की खेती सामान्यतया वर्षा के मौसम में की जाती है अतः सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध हो वहां पर लम्बे समय तक वर्षा न हो तो सिंचाई करनी चाहिए। सोयाबीन में 3 क्रान्तिक अवस्थाएं होती हैं– पौध अवस्था, फूल आने पर एवं दाना भरने पर। अतः इन अवस्थाओं पर सुनिश्चित करना चाहिए कि पानी की कमी न रहे। सोयाबीन की फसल जल भराव के प्रति काफी संवेदनशील होती है। अतः जहा पर जल भराव की समस्या हो वहां पर जल निकाश की उचित व्यवस्था होनी चाहियें।

कीट एवं रोग प्रबंधन

सोयाबीन की फसल में अनेक कीट एवं रोग लगते है जो फसल की उपज वृद्धि तथा टिकाउपन में एक प्रमुख समस्या है। इस फसल को कीटों एवं रोगों से काफी नुकसान पहुंचता है जिससे इसकी उपज में काफी कमी हो जाती है। यदि समय रहते इन रोगों एवं कीटों का नियंत्रण कर लिया जाये तो सोयाबीन की उत्पादकता में बढ़ोत्तरी की जा सकती है। नीला भृंग, तना मक्खी, सफेद मक्खी, हरा सेमीलूपर, तंबाकू की इल्ली, चने का फली छेदक एवं चक्र भृंग (गर्डल बीटल) सोयाबीन के मुख्य नाशी कीट, जबकि चारकॉल रोट, कॉलर रोट, अंगमारी एवं फली झुलसा रोग, पीला मोजेक एवं गेंरूआ रोग सोयाबीन के मुख्य रोग हैं।

सोयाबीन के प्रमुख कीट एवं प्रबंधन

सोयाबीन की फसल पर लगभग 300 प्रकार के कीट आकर्षित होते हैं, किन्तु उनमें से केवल 9–10 प्रकार के कीट ही फसल को आर्थिक नुकसान पहुंचाते हैं। सोयाबीन की फसल को नीला भृंग, तना मक्खी, सफेद मक्खी, हरा सेमीलूपर, तंबाकू की इल्ली, चने का फली छेदक एवं चक्र भृंग (गर्डल बीटल) कीट आर्थिक क्षति पहुंचाते हैं।

फसल पर कीटों का कम से कम प्रकोप हो इसके लिए गर्मी के मौसम में खेत की गहरी जुताई करें जिससे भूमि में छिपे कीटों की विभिन्न अवस्थाए नष्ट हो जाती हैं, उचित किस्मों का चुनाव करें, संतुलित पौषक तत्व प्रबंधन करें, उचित बीजदर का उपयोग करें एवं कीटों से ग्रसित पौधों को नष्ट करें। फसल में कीटों के प्रकोप के आधार पर ही उचित समय पर अनुशंसित रसायनों का उचित मात्रा में उपयोग करें। कीटों के आक्रमण की तीव्रता निर्धारित करने के लिए यह आवश्यक है कि फसल की सतत् निगरानी की जाए।

चक्र भृंग, तना मक्खी व अन्य मिट्टी में निवास करने वाले कीटों के प्रबन्धन के लिये फोरेट 10 जी को 10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के समय उर्वरक के साथ–साथ मिट्टी में मिलायें। जिन स्थानों पर तना मक्खी से फसल को प्रारंभिक अवस्था में नुकसान होता है, वहाँ फसल की 7–10 दिन की अवस्था पर *थायोमिथॉक्सेम* 25 डब्लू.जी. का 100 ग्रा. प्रति है. की दर से छिड़काव करें। नीला भृंग के प्रबन्धन हेतु *क्विनालफॉस* 25 ई.सी. की 1.5 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर में छिड़काव करें। तम्बाकू की इल्ली एवं रोयेंदार इल्ली छोटी अवस्था में झुण्ड में रहकर एक ही पौधे की पत्तियों को खाती हैं। इस प्रकार के पौधों को नष्ट कर देने से इनके प्रकोप से बचा जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर रासायनिक कीटनाशक जैसे– *क्लोरपाइरीफॉस* 20 ई.सी. (1.5 लीटर/है.) या *क्विनालफॉस* 25 ई.सी. (1.5 लीटर/है.) का उपयोग करें। चक्र भृंग द्वारा ग्रसित भाग अथवा पौधों को चक्र के नीचे से काटकर नष्ट कर दें। यदि यह संभव न हो तो *ट्राइजोफॉस* 40 ई.सी. (0.80 लीटर/है.) या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. (0.80 लीटर/है.) या *इथोफेनप्रॉक्स* 10 ई.सी. (1.0 लीटर/है.) का छिड़काव करें। किसी भी कीटनाशक का छिड़काव करने के लिए प्रति हेक्टेयर 750–800 लीटर पानी का प्रयोग अवश्य करें। पत्तियां खाने वाली इल्लियों के नियंत्रण हेतु सूक्ष्मजीव आधारित जैविक कीटनाशकों का प्रयोग करें। पत्तियां खाने वाली इल्लियों के रासायनिक

प्रबंधन हेतु तंबाकू की इल्ली के प्रबंधन हेतु अनुशंसित कीटनाशकों का उपयोग करें। चने का फली छेदक के प्रबंधन के लिए *लेम्डासायहेलोथ्रीन* 5 ई.सी. (300 मि.ली./है.) या *इंडोक्साकार्ब* 14.5 एस.सी. (300 मि.ली./है.) का छिड़काव करें।

सोयाबीन के प्रमुख रोग एवं प्रबंधन

चारकॉल रोटः यह एक फफूंदजनित रोग है। यह रोग मिट्टी में नमी की कमी एवं गर्म वातावरण में होता है। रोग की प्रारंभिक अवस्था में पौधों की जड़ों में सड़न पैदा होती है जिससे नवजात पौधें सूखकर मर जाते हैं। इसके अतिरिक्त बड़े पौधों में जमीन के उपर वाला हिस्सा मुरझा जाता है व पत्तियां सूखने लगती हैं एवं अंत में पौधा सूख जाता है। रोग ग्रसित पौधे के तने एवं जड़ के छिलके को हटाकर देखने पर वहां असंख्य छोटे–छोटे काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। फसल पर रोग का कम से कम प्रकोप हो इसके लिए गर्मी के मौसम में खेत की गहरी जुताई करें जिससे भूमि में मौजूद रोगकारक नष्ट हो सकें। रोग रोधक किस्मों जैसे– जे.एस. 75–46, एन.आर.सी. 37, पी.के. 1042, वी.एल.एस. 2 आदि की बुवाई करें, उचित बीजदर का उपयोग करें, संतुलित पौषक तत्व प्रबंधन करें एवं उचित फसल चक्र अपनावें। फसल में रोग के व्यापक प्रसार को रोकने हेतु रोग ग्रसित पौधों को नष्ट करें। रोग से बचाव हेतु बुवाई से पहले 3 ग्राम थाइरम अथवा 2 ग्राम मेन्कोजेब या कार्बेण्डाजिम (बॉविस्टीन) कवकनाशक दवाई प्रति किलो ग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें अथवा बीज को जैविक उत्पाद ट्राइकोडर्मा विरिडी की 8–10 ग्राम मात्रा प्रति किलोग्राम के हिसाब से बीजोपचार करें। खड़ी फसल में रोग प्रबंधन हेतु कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू.पी. या *थायोफेनॅटमिथाइल* 70 डब्ल्यू.पी. की 0.5 कि.ग्रा. मात्रा को 700–800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 35 व 50 दिन बाद दो छिड़काव करें।

कॉलर रोटः यह भी फफूंदजनित रोग है तथा अधिक नमी एवं तापमान की स्थिति में दिखाई देता है। रोग से प्रभावित पौधों के तनों के जमीन के पास वाले हिस्से पर हल्के भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जो कि सफेद कवकजाल से ढ़क जाता है एवं इसके ऊपर लाल–भूरे रंग के सरसों के बीज जैसे गोलाकार स्कलेरोटिया बनते हैं जो रोग के प्रमुख लक्षण हैं। बाद में तने का यह हिस्सा सड़ जाता है जिससे पौधा मुरझाकर गिर जाता है। रोग से बचाव हेतु आवश्यक उपाय करें। रोग रोधक किस्म एन.आर.सी. 37 की बुवाई करें। रासायनिक उपचार के लिए चारकॉल रोट के समान प्रबंधन के उपाय अपनावें।

अंगमारी एवं फली झुल्सा रोग : यह फफूंदजनित रोग अधिक तापमान एवं अधिक नमी होने पर प्रकट होता है। सोयाबीन में फूल आते समय तने, पर्णवृन्त व फलियों पर लाल से गहरे भूरे रंग के असामान्य आकार के धब्बे दिखाई देते है जो बाद में फफूंद की काली संरचनाओं व छोटे कांटों जैसी रचनाओं से ढ़क जाते हैं तब इन्हें आंखों से भी देखा जा सकता है। पत्तियों की शिराओं का पीला–भूरा होना, पत्तियों का मुड़ना व झड़ना भी इस रोग के लक्षण है। फसल में रोग का प्रकोप न हो इसके लिए आवश्यक बचाव के उपाय अपनावें। रोग रोधक किस्मों जैसे– हिमसोया 1563, जे.एस. 80–21, एन.आर.सी. 7, एन.आर.सी. 12, वी.एल.एस. 21 आदि की बुवाई करें। बीज को बुवाई से पहले उपचारित करें। खड़ी फसल में रोग का प्रकोप होने पर जाइनेब या मैंकोजेब के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

पीला मोजेक : यह रोग विषाणु जनित रोग है एवं सफेद मक्खी इस विषाणु के वाहक का कार्य करती है। इस रोग का प्रमुख लक्षण पत्तियों पर पीले–हरे रंग के धब्बों का बनना है। रोग की तीव्र अवस्था में पत्तियां पीली पड़ जाती है। बाद में पीले हिस्सों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं एवं कुछ दिनों में पत्तियां झुलसी हुई प्रतीत होती हैं। रोग से बचाव हेतु रोग रोधक किस्मों जैसे– पी.के. 1024, पी.के. 1029, पूसा 37, एस.एल. 525, एस.एल. 688, जे. एस. 97–52 आदि की बुवाई करें। इस रोग के विषाणु का वाहक सफेद मक्खी होती है अतः रोग वाहक को नष्ट करने हेतु आवश्यक उपाय अपनावें। रोग की रोकथाम हेतु बीज को थायोमिथोक्सेम 70 डबल्यू.एस. की 3 ग्राम मात्रा से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करके बुवाई करें। रोग की शुरूआती अवस्था में फसल पर थायोमिथोक्सेम

25 डबल्यू.जी. की 100 ग्राम मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से या मिथाइल डेमेटोन (मेटासिसटोक्स) या इथोफेनप्राक्स का 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करना चाहिए।

गेंरूआ रोग :– यह एक फफूंदजनित रोग है, जो केवल जीवित पौधों में ही फैलता है। अधिक वर्षा होने या तापमान कम (18 से 28 डिग्री सेल्सियस) व नमी अधिक (आपेक्षिक आर्द्रता 80 प्रतिशत के आसपास) होने पर व पत्तियों पर 3–4 घंटों तक लगातार पानी जमा रहने पर रोग आने की संभावना बढ़ जाती है। रात या सुबह के समय कोहरा रोग की संभावनाओं को बढ़ा देता है। रोग की प्रारंभिक अवस्था में पौधों पर छोटे–छोटे, सुई के नोक के आकार के मटमैले भूरे व लाल–भूरे, सतह से उभरे हुए धब्बें दिखाई देते हैं। इन धब्बों के आसपास का हिस्सा पीला दिखाई देता है। पहले धब्बे पत्तियों की निचली सतह पर दिखाई देते हैं एवं बाद में धब्बे गहरे भूरे–काले रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। धीरे–धीरे पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती हैं एवं एक सप्ताह में झड़ जाती हैं। रोग ग्रसित पत्तियों को अंगुली से थपथपाने पर भूरे रंग का पाउडर निकलता है। फसल में रोग का प्रकोप न हो इसके लिए आवश्यक बचाव के उपाय अपनावें। रोग से बचाव हेतु रोग रोधी किस्मों जैसे– इंदिरा सौया 9, जे.एस. 80–21, पी.के. 1024, पी.के. 1029, एम.ए.यू.एस. 01–2 आदि की बुवाई करें। रोग के प्रकोप की शुरूआती अवस्था में रोग से ग्रसित पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देवें। रोग के लक्ष्ण दिखाई देने पर फसल में हेक्साकोनाजोल या प्रोपीकोनाजोल या ट्राइडेमेटोन की 800 ग्राम मात्रा का प्रति हेक्टेयर क्षेत्रफल में 800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

फसल कटाई, मंड़ाई एवं रख रखाव

किसी भी फसल में उपज एवं गुणवता के लिहाज से कटाई के समय का बहुत महत्व होता है। जब सोयाबीन की पत्तियों का रंग पीला एवं फलियों का रंग पीला या भूरा हो जाए तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। कटाई के बाद फसल को चार–पांच दिनों तक खेत में ही सूखने देना चाहिए, ताकि दानों में नमी की मात्रा कम होकर 13–14 प्रतिशत हो जाए। इसके बाद दानों को पौधों से अलग कर लेना चाहिए। पौधों को डण्डे से पीटकर दानों को अलग कर लेना चाहिए। आजकल दानों को अलग करने के लिए थ्रेसर उपलब्ध है अतः इसका उपयोग करना चाहिए। थ्रैसिंग के दौरान ध्यान रहें कि थ्रेसर की गति ज्यादा तेज न हो अन्यथा बीजों को नुकसान हो सकता है। थ्रैसिंग के बाद दानों को साफ कर लेवें एवं 8–10 प्रतिशत नमी की अवस्था में भंडारित करें।

बाजरे की सफल खेती हेतु आधुनिक सस्य प्रौद्योगिकी एवं नवीन कृषि यंत्र

मुकेश कुमार चौधरी[1], रामस्वरूप बाना[1] एवं मधु पटियाल[2]

[1]भा.कृ.अनु.प. – भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली–110012

[2]भा.कृ.अनु.प. – भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, क्षेत्रीय केंद्र, शिमला

बाजरा एक खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली फसल है, जिसका उपयोग देश के कम वर्षा वाले हिस्सों में भोजन के रूप में किया जाता है। इसका व्यापक रूप से चारे के रूप में भी उपयोग किया जाता है। बाजरे का उपयोग कई औद्योगिक उत्पादों में भी होता है। बाजरे के 100 ग्रा. खाद्य हिस्से में लगभग 11.6 ग्राम प्रोटीन, 67.5 ग्रा. कार्बोहाइडेट, 0.8 मि.ग्राम लौह तत्व और 132 माइक्रोग्राम कैरोटीन तत्व मौजूद होता है, जो हमारी आँखों की सुरक्षा करता है। अधिक ऊर्जा होने के कारण बाजरे को सर्दियों के मौसम में खाने में अधिक प्रयोग किया जाता है। बाजरा कम सिंचाई वाले क्षेत्रों और कम उपजाऊ एवं कम नमी वाली भूमि में भी उग सकता है। इस फसल को जून से जुलाई के अंत तक बोया जाता है। बाजरे की खेतो में काफी हद तक यंत्रो जैसे कि कल्टीवेटर, डिस्क प्लौ, डिस्क हैरो, पटेला, बाजार बुवाई यंत्र, रीपर, थ्रेशर आदि यंत्रो का उपयोग किया जाता है परन्तु कुछ क्षेत्रों में मशीनों से कृषि कार्य नहीं किया जाता है। यदि इन क्षेत्रों में नये एवं उपयोगी यंत्रो की जानकारी हो तो इससे उत्पादकता में वृद्धि एवं लागत में कमी की जा सकती है। साथ ही, बाजरा उत्पादन बदने हेतु नवीन सस्य वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी को अपनाना भी आवश्यक है। प्रस्तुत आलेख में बाजरा उत्पादन की आधुनिक व वैज्ञानिक पद्धति तथा इस हेतु उपयोगी यंत्रो का विवरण विस्तार से दिया गया है।

भूमि एवं जलवायु सम्बन्धी आवश्यकताएं

बाजरे की खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम है। बाजरे की खेती सूखे एवं गर्म जलवायु परिस्थितियों में की जा सकती है। इसकी खेती के लिए 40–60 सेमी के बीच वार्षिक वर्षा एवं 20°C से 30°C के बीच तापमान की आवश्यकता होती है। फसल सूखे को सहन कर सकती है लेकिन 90 सेमी या उससे अधिक वर्षा का सामना नहीं कर सकती। बाजरा उन क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है जहां धान, ज्वार या मक्का जैसी अन्य अनाज की फसलें नहीं हो पाती हैं।

खेत की तैयारी

गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें और बुवाई से पूर्व 2 से 3 बार हैरो या कल्टीवेटर से जुताई करें क्योंकि बाजरे के बीज बहुत छोटे होते हैं इसलिए इसको बहुत बारीक मृदा की आवश्यकता होती है। बुवाई से 2 से 3 दिन पहले खेत में पटेला करना और खेत को समतल करना आवश्यक है। दीमक व लट के प्रकोप वाले क्षेत्रों में 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से फोरेट अन्तिम जुताई से पूर्व डालनी चाहिए। खेत की तैयारी के लिए कल्टीवेटर, डिस्क प्लौ, डिस्क हैरो, पटेला आदि यंत्रो का उपयोग किया जा सकता है। आजकल शून्य जुताई विधि से भी बाजरे की बुवाई की जा सकती है। इसके लिए शून्य जुताई सीड ड्रिल या हैप्पी सीडर का उपयोग करना चाहिये। शुन्य जुताई से सफल बाजरा उत्पादन हेतु आवश्यक है कि खेत में पूर्व फसलों के अवशेषों का आवरण बनाकर रखें।

उन्नत किस्में

भारत में बाजरे की बुवाई के लिए उन्नतनवीन किस्में निम्न प्रकार हैं

क्र. सं.	किस्म	उपयुक्त क्षेत्र	प्रमुख विशेषताएं
1.	पूसा 1201	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र	मध्यम अवधि में पकने वाली तथा मृदु रोमिल आसिता,रोली किट्ट रोग रोधी किस्म
2.	बी. एच. बी. 1202	राजस्थान	अल्प अवधि में पकने वाली तथा मृदु रोमिल आसिता, झुलसा रोग एवं प्रमुख कीटों से रोधी किस्म
3.	बलवान	राजस्थान	अधिक अवधि में पकने वाली तथा सूखा रोधी किस्म
4.	जी. के. 1116	राजस्थान	मध्यम अवधि में पकने वाली तथा मृदु रोमिल आसिता, अर्गट व किट्ट रोधी किस्म
5.	एच. एच. बी. 299	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब,दिल्ली, गुजरात	मध्यम अवधि में पकने वाली तथा प्रमुख रोगों व कीटों से रोधी
6.	पी. बी. 1705	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश	मध्यम अवधि में पकने वाली तथा प्रमुख रोगों व कीटों से रोधी
7.	ए. एच. बी. 1200	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, तेलंगाना	मध्यम अवधि में पकने वाली, लोह तत्व से भरपूर, प्रमुख रोगों व कीटों से रोधी उपजाऊ किस्म
8.	एन. बी. एच. 4903	महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, तेलंगाना	अधिक अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों, कीटों व सूखा सहन करने में सक्षम
9.	महाबीज 1005	महाराष्ट्र	मध्यम अवधि में पकने वाली तथा प्रमुख रोगों व कीटों से रोधी
10.	पी. बी. एच. 306	तमिलनाडु, महाराष्ट्र, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक,	अधिक अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों, कीटों व सूखा सहन करने में सक्षम
11.	एक्स. एम. टी. 1497	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश	मध्यम अवधि में पकने वाली तथा प्रमुख रोगों व कीटों से रोधी
12.	के. बी. एच. 3940	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश	अधिक अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों को सहन करने में सक्षम
13.	नंदी 75	गुजरात, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, तमिलनाडु	अधिक अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों को सहन करने में सक्षम
14.	जे. के. बी. एच.1100	उत्तरप्रदेश	अधिक अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों को सहन करने में सक्षम
15.	86 एम. 82	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश	अधिक अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों को सहन करने में सक्षम
16.	जे. के. बी. एच.1105	उत्तर प्रदेश	अधिक अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों को सहन करने में सक्षम
17.	एम. पी. एम. एच. 21	राजस्थान, हरियाणा, गुजरात,	कम अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों को सहन करने में सक्षम
18.	पी. एच. बी. 2884	पंजाब	अधिक अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों को सहन करने में सक्षम
19.	एच. एच. बी. 272	राजस्थान, हरियाणा, गुजरात,	कम अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों को सहन करने में सक्षम
20.	86 एम. 84	राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गुजरात, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश	अधिक अवधि में पकने वाली, प्रमुख रोगों को सहन करने में सक्षम

उपरोक्त किस्में/हाइब्रिड बाजरे की नवीन किस्में है जो अधिक उत्पादन लेने में सहायक है। उपरोक्त किस्मों के अतिरिक्त कुछ पुरानी किस्में भी है जो विभिन्न कृषि क्षेत्रों में बोई जाती है। ये किस्में निम्न प्रकार हैः–

राजस्थानः आर.एच.बी.–121, आर.एच.बी.–154, सी.जेड. पी.–9802, राज.–171, डब्लू.सी.सी.–75, पूसा–443, आर. एच.बी.–58, आर.एच.बी.–30, आर.एच.बी.–90

महाराष्ट्रः संगम, आर.एच.आर.बी.एच.–9808, प्रभणी संपदा, आई.सी.एम.एच.–365, साबोरी, श्रद्धा, एम.एच.–179

गुजरातः जी.एच.बी.–526, जी.एच.बी.–558, जी.एच. बी.–577, जी.एच.बी.–538, जी.एच.बी.–719, जी.एच. बी.–732, पूसा–605

उत्तर प्रदेशः पूसा–443, पूसा–383, एच.एच.बी.–216, एच.एच.बी.–223, एच.एच.बी.–67 इम्प्रूव्ड

हरियाणाः एच.सी.–10, एच.सी.–20, पूसा–443, पूसा–383, एच.एच.बी.–223, एच.एच.बी.–216, एच.एच.बी.–197, एच.एच.बी.–67 इम्प्रुव्ड, एच.एच.बी.–146, एच.एच.बी.–117

चारे के लिए बाजरे की किस्मेंः– राज बाजरा चरी–2, जाइन्ट बाजरा, ए.वी.के.बी.–2, ए.वी.के.बी–19, जी.एफ. बी.–1, पी.सी.बी.–164, नरेन्द्र चरी बाजरा–2

बुवाई

बाजरे की बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई अंत की जाती है परन्तु बुवाई का सबसे उपयुक्त समय जुलाई मध्य तक होता है। बुवाई के लिए बीज की आवश्यकता बुवाई की विधि पर निर्भर करती है जेसे की ड्रिलिंग विधि के लिए 4–5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर और डिबलिंग विधि के लिए 2.5– 3कि.ग्रा. प्रति हैक्टर बीज की आवश्यकता होती है। बाजरे के उन्नत उत्पादन के लिए बाजरे की पंक्तियों के बीच 40–45 सेमी, पंक्तियों के भीतर व पौधों के मध्य 10–15 सेमी की दूरी होनी चाहिए। पंक्तियों और पौधों के मध्य पर्याप्त दूरी रखने से निराई– गुड़ाई में आसानी रहती है और पौधे स्थान, जल व पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा नहीं करते, फलस्वरूप फसल की उपज अच्छी होती है।

निराई–गुड़ाई एवं खरपतवार प्रबंधन

फसल को खरपतवार से बचाने के लिए निराई– गुड़ाई का कार्य समय पर करना चाहिए। निराई–गुड़ाई के कार्य के लिए फावड़ा, कस्सी, खुरपी, दो पहिया हो, पावर वीडर आदि का उपयोग किया जा सकता है, परन्तु छोटे किसानों के पास जमीन कम होने के कारण किसान आमतौर पर फावड़ा, कस्सी या खुरपी का उपयोग करते है। खरपतवार नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशी रसायनों का भी उपयोग किया जा सकता है। बाजरे से सफल खरपतवार प्रबंधन के लिए बुवाई के पश्चात् व अंकुरण से पूर्व एट्राजीन रसायन का 500 ग्रा. सक्रीय तत्व 500–700 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टर की दर से छिडकाव करें। खरपतवारनाशियों के छिडकाव के लिए पावर स्प्रयेर, नेपसेक स्प्रयेर व फूट स्प्रयेर का प्रयोग करना लाभप्रद है। कड़ी फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु जब फसल 20–25 दिन की हो जाए तब निराई दृ गुडाई करें या फसल 3 सप्ताह की होने पर टेम्बोट्रिओंन नामक खरपतवारनाशी को 500–700 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टर की दर से छिडकाव करें।

पोषक तत्व प्रबंधन

मृदा परीक्षणों के आधार पर संस्तुत उर्वरकों का उपयोग करना अधिक लाभप्रद रहता है। परन्तु यदि मृदा जांच परिणाम उपलब्ध नहीं है तो सिंचित क्षेत्रों में बाजरे के लिए नाइट्रोजन 80 कि.ग्रा./हैक्टर, फॉस्फोरस 40 कि.ग्रा./हैक्टर एवं पोटाश 40 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से प्रयोग करें। बारानी क्षेत्र के लिए नाइट्रोजन 60 कि.ग्रा./हैक्टर, फॉस्फोरस 30 कि.ग्रा./हैक्टर एवं पोटाश 30 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से उपयोग करें।

सिंचित व असिंचित क्षेत्रों में जस्ते की कमी हो तो 5 कि.ग्रा. जस्ता/हैक्टर की दर से दें। जैव उर्वरकों जैसे एजोस्पिरिलम व फॉस्फोरस घोलक जैव उर्वरक के द्वारा बीजोपचार करके बुवाई करना फसल के लिए अधिक लाभप्रद रहता है। सिंचित व असिंचित दोनों परिस्थितियों में नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस, पोटाश व जस्ते की पूरी मात्रा लगभग 3–4 से.मी. गहराई पर मृदा में डालनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा बुवाई के 30 से 35 दिन बाद मृदा में उपयुक्त नमी होने की स्थिति में डालनी चाहिए।

सिंचाई

बाजरा खरीफ के मौसम में उगाई जाने फसल है और यह एक सूखा प्रतिरोधी फसल है। इसलिए इसमें किसी विशेष सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है,परन्तु फूल आते समय व दाना बनते समय नमी की कमी से उपज में नुकसान हो सकता है। इसलिए उस समय हल्की सिंचाई की जा सकती है। उस समय यह भी ध्यान रखा जाये कि बाजरे की फसल जल भराव से भी प्रभावित होती है अतः सही जल निकासी भी आवश्यक है।

कटाई

बाजरे की फसल जैसे ही तैयार हो जाये उसकी कटाई की जानी चाहिये। अगर समय पर कटाई नहीं की जाये तो फसल सूख जाती है जिससे अनाज और चारे का नुकसान होता है।बाजरे की फसल तब काटी जाती है जब अनाज काफी सख्त हो जाता है और उसमें नमी होती है।कटाई लिए दरांती, गंडासा, ट्रेक्टर से संचालित रीपर का उपयोग किया जा सकता है। ज्यादातर किसान दांतली या गंडासे का उपयोग करते है। इसके बाद बाजरे के डंठलों से उसकी बालियों को अलग किया जाता है

तुड़ाई (थ्रेशिंग)

जब बाजरे के डंठलों से उसकी बालियों को अलग किया जाता है तो उसके बाद उनको 4 से 5 दिन के लिए धूप में सुखाया जाता है। तत्पश्चात अनाज को तूड़े से अलग करने के लिए थ्रेशिंग की जाती है। पुराने समय में यह कार्य बाजरे को लकडीयों से पीटकर निकाला जाता था जिसमे बहुत समय लगता था एवं बहुत श्रम की आवश्यकता होती थी। इसलिए आजकल ट्रेक्टर और मोटर से संचलित मशीन(थ्रेशर) से तुड़ाई (थ्रेशिंग) की जाती है इससे काफी समय भी बचता है एवं बाजरा भी साफ मिलता जिससे बाजरे की सफाई दोबारा नहीं करनी पडती है।

भंडारण

तुड़ाई (थ्रेशिंग) से प्राप्त अनाज को धूप में सुखाना चाहिए जब तक कि उसमे नमी की मात्रा 8 से 10प्रतिशत हो जाये उसके बाद बोरों में भरकर किसी भंडार कक्ष में भंडारित करें और सुनिचित कर लें कि भंडार कक्ष में नमी का कोई स्रोत ना हो।

पॉवर (शक्ति स्रोत)

किसान अपने खेत एवं खर्चा करने की क्षमता के अनुसार मशीन का उपयोग कर सकते हैं बाजरे की खेती के लिए उपयोग किये जाने वाले यंत्रों को उनके शक्ति स्रोत के आधार पर तीन भागों में वर्गीकृत किया गया हैंः–

1. **मानव संचालित यंत्रः** फावड़ा (कस्सी), खुरपी, दो पहिया हो, कुदाल, इत्यादि।
2. **पशु संचालित यंत्रः** देसी हल, लोहे का हल, पटेला, इत्यादि।
3. **पॉवर संचालित यंत्रः** जीरो टिल–ड्रिल, हेप्पी सीडर, कल्टीवेटर, डिस्क प्लौ, डिस्क हैरो, पटेला, बाजरा बुवाई यंत्र (सीड–ड्रिल), रीपर, थ्रेशर, इत्यादि।

किसान ज्यादातर 30–40 हॉर्स पॉवर की शक्ति का ट्रेक्टर उपयोग में लेते हैं। निरंतर कृषि कार्य करने के लिए ओसत पॉवर की उपलब्धता एक पुरुष के लिए 60 वाट, एक महिला के लिए 48 वाट और एक बच्चे के लिए 30 वाट होती है। मानव संचालित यंत्रों से कार्य धीमी गति से होता है और पैसा भी ज्यादा लगता है और अगली फसल के लिए समय पर जमीन उपलब्ध नहीं हो पाती है इन सबसे से बचने और ज्यादा पैदावार के लिए मशीनों का उपयोग किया जाना चाहिए।

मिश्रित खेती

अनिता कुमावत[1], सीमा सेपट[2] एवं कुलदीप कुमार[1]

[1]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान, अनुसन्धान केंद्र, कोटा–324002

[2]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान नई दिल्ली–110012

कृषि में मशीनों, उर्वरकों, कीटनाशकों, अधिक उपज वाली फसल किस्मों, बेहतर सिंचाई की प्रणालियों इत्यादि नई तकनीकों के बढ़ते प्रयोग से खाद्यान्न उत्पादन में कई गुना वृद्धि हुई है। परन्तु रसायनों (रासायनिक खाद, कीटनाशी एवं खरपतवारनाशी) के अंधाधुंध प्रयोग एवं सघन फसल प्रणाली से कृषि में सामाजिक व पर्यावरण–संबंधी अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं। मृदा में ह्यूमस एवं कार्बनिक पदार्थों की मात्रा में लगातार गिरावट आ रही है जिससे मृदा में जिंक, बोरोन, मैंगनीज, सल्फर, कॉपर, एवं मोलिब्डेनम जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की व्यापक रूप से कमी हो गयी है। फसलों में मृदा जनित रोगों का प्रकोप बढ़ रहा है। मृदा की सरंचना का नष्ट होना, अम्लीय एवं क्षारीय पी एच. वाली मृदा में पोषक तत्वों का घटना, मृदा में पोषक तत्व एवं जल धारण क्षमता में कमी होना और भूमिगत जल के प्रदूषण जैसे कारणों से मृदा एवं पर्यावरण स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ा है जिसके फलस्वरूप मृदा उत्पादकता में भी गिरावट आयी है। इसके अतिरिक्त नई मशीनों व उपकरणों के प्रयोग से खेतों पर काम करने वाले मजदूरों में बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है।

बदलती पर्यावरणीय स्थितियों में आधुनिक कृषि प्रणालियों के नकारात्मक परिणामों के प्रभाव से बचने एवं कृषि उत्पादकता को बढ़ाने के लिए टिकाऊ कृषि प्रणाली की परमावश्यकता है। मिश्रित खेती वह कृषि प्रणाली है जो पर्यावरण को संरक्षित रखने के साथ–साथ कृषकों, मजदूरों, उपभोक्ताओं आदि के लिये सम्पूर्ण, संतुलित एवं स्वस्थ खाद्य तंत्र प्रदान करती है। मिश्रित खेती बिना भूमि की उत्पादकता का विनाश किये एवं पर्यावरण को भारी हानि पहुँचाए, वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या को पर्याप्त खाद्यान्न एवं लाभ प्रदान कर सकती है। यह कृषि प्रणाली कम से कम विषैली हैं, जो ऊर्जा का उचित संचालन करती हैं तथा उत्पादन व लाभ के स्तर को बनाए रखती हैं। मिश्रित खेती मृदा एवं पर्यावरण के लिए बेहद आवश्यक है क्योंकि यह प्रकृति के नियमों के अनुरूप होती है।

मिश्रित खेती

कृषि उत्पादन की वह प्रणाली जिसमें फसलों के उत्पादन के साथ–साथ पशुपालन भी किया जाता है तथा फसलोत्पादन के साथ–साथ जब पशुपालन भी आय का स्रोत हो तो मिश्रित कृषि या मिश्रित खेती कहते हैं। मिश्रित् खेती में फसलोत्पादन के साथ दुधारू गाय एवं भैंस पालन, भेड़, बकरी अथवा मुर्गी–पालन, फल एवं सब्जी उत्पादन का भी समावेश किया जा सकता है। मिश्रित खेती में मनुष्य, पशु, वृक्ष और मृदा सभी एक दूसरे से जुड़े हुए एवं एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। सिंचाई की सहायता से मृदा, मनुष्य और पशुओं के लाभ के लिए, फसलें और वृक्ष पैदा करती है और इसके बदले में मनुष्य और पशु खाद द्वारा मृदा को उर्वरक बनाते हैं। इस प्रकार की कृषि–प्रणाली में प्रत्येक परिवार एक या दो गाय या भैंस, बैलों की जोड़ी और, यदि सम्भव हो तो, कुछ मुर्गियां भी पाल सकता है। खेत के थोड़े से भाग में शाक– सब्जियाँ उगा सकता है, खेतों में अनाज आदि की फसलें पैदा कर सकता है और मेड़ों के सहारे घर–खर्च के लिए या बेचने के लिए फल देने वाले वृक्ष उगा सकता है। जहाँ संभव हो, किसान अपने खेत के छोटे से भाग में कुंड में मछलियां भी पाल सकता है।

कम पानी वाले क्षेत्रों में पेड़–पौधों को लगाने का तरीका अलग होता है इसमें खेत की मेंड़ों के सहारे पीछे की ओर, शीशम, बबूल जैसे इमारती लकड़ी के वृक्ष और सामने की ओर फल वृक्ष जैसे आम, पपीता, अमरूद, बेल, आमला, नींबू और संतरा आदि वृक्ष लगाने चाहिए। किसान अपने परिवार के लिए स्वादिष्ट शाक–सब्जी के रूप में काम आने वाले कटहल के भी एक–दो वृक्ष उगा

जा सकता हैं। बेल के फल पाचन–क्रिया, पेट के विकारों में, विशेषकर अतिसार और संग्रहणी जैसे रोगों में, अति लाभदायक होते हैं। आमले के फलों में विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में होती है। आमले के फलों से चटनी और मुरब्बे तैयार किए जाते हैं।

भारत में मिश्रित् खेती प्राचीन काल से ही होती आ रही है। मिश्रित खेती कहीं पर लाभ के उद्देश्य से किया जाता है तो कहीं मजबूरी के कारण। जैसे किसी क्षेत्र विशेष में अगर पशुओं की महामारी होने की संभावना रहती है तो केवल फसल उत्पादन ही कर पाता है और यदि फसलों में बीमारी होने की सम्भावना हो तो कृषक अपनी अजीविका के लिये पशुपालन की तरफ देखता है। इस तरह की खेती कभी–कभी लघु एवं सीमांत किसानों द्वारा परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने एवं जीवन निर्वाह के लिए की जाती है। किसान कई तरह की फसलों का उत्पादन करता है और यह उत्पादन परिवार की जरूरतों के आधार पर ही होता है। इस तरह की खेती में सभी प्रकार की खाद, जैसे कि घर के कचरे, पशु के गोबर, हरी खाद, रात की मिट्टी और कुछ रासायनिक उर्वरक का उपयोग किया जाता है।

मिश्रित खेती की आवश्यकता

बढ़ती हुई जनसंख्या को भरपूर मात्रा में स्वस्थ, पौष्टिक एवं संतुलित भोजन प्रदान करने के अतिरिक्त मृदा की दीर्घकालीन उत्पादकता और बड़ी संख्या में मृदा, पौधों एवं मनुष्यों में पोषक तत्वों की कमी भी एक बड़ी चुनौती है। मृदा एवं पौधों में पोषक तत्वों की कमी के कारण उत्पादित फसल भी कम गुणवत्ता वाली होती है और इसके कारण देश में बड़ी संख्या में विशेषकर बच्चों एवं महिलाओं में पोषक तत्वों की कमी व उनसे सम्बंधित विकार उत्पन्न हो रहे हैं। भारत में प्रति व्यक्ति जोतों का आकार बढ़ती हुई जनसंख्या, शहरीकरण और मृदा क्षरण के कारण दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है। कृषि योग्य भूमि भी सघन एकल फसल प्रणाली के कारण की उर्वरता एवं उत्पादकता घट रही है। रासायनिक खेती बढ़ती जनसँख्या को पर्याप्त खाद्यान की आपूर्ति नहीं करवा सकती। अतः वर्तमान स्थिति में ऐसी कृषि पद्धति की आवश्यकता है जो कि न केवल उत्पादन बढ़ा सके बल्कि मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संतुलन को भी बनाये रखे। मिश्रित खेती एक ऐसी ही कृषि प्रणाली है जो अधिक उत्पादन के साथ–साथ मृदा के स्वास्थ्य को भी बनाये रखती हैं और किसानों की आमदनी भी बढ़ा सकती है।

मिश्रित खेती के प्रमुख घटक

फसल उत्पादनः मिश्रित खेती में किसान भौगोलिक और पर्यावरण की स्थिति के अनुसार अन्न वाली फसलों जैसे धान, गेहूं, बाजरा, मक्का आदि के साथ साथ अधिक आर्थिक मूल्य वाली फसलों जैसे दलहनी फसलें, तिलहनी फसलें, कपास, गन्ना, आलू, इत्यादि फसलों को भी फसल प्रणाली में सम्मिलित करके खेती को अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ बना सकते हैं। अन्न वाली फसल प्रणाली में दलहनी फसलों का समावेश खाद्य एवं पोषक तत्वों की स्थिरता को बनाये रखने के लिए एक बेहतर विकल्प है।

पशुपालनः पशुपालन भारतीय कृषि की अर्थव्यवस्था में अहम् भूमिका निभाता है। मिश्रित खेती में किसानों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए पशुपालन कृषि का एक मुख्या अंग है। बिना पशुपालन के खेती करना आर्थिक दृष्टि के साथ साथ पर्यावरणीय दृष्टि से भी उचित नहीं है। किसान पशुपालन के लिए दुधारू, गाय, भैंस, भेड़ या बकरी को भी अपनी जरूरतों के अनुसार कृषि प्रणाली में सम्मिलित कर सकता है

पशुपालन किसानों को फसलों के लिए गोबर की खाद एवं घरेलू उपयोग के लिए ईंधन जैसी सुविधाएँ देता है। किसान बैलों को खेत जोतने एवं बैलगाड़ी के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। इसलिए फसलोत्पादन के साथ पशुपालन करने से अच्छी गुणवत्ता वाले स्वस्थ, एवं संतुलित भोजन की प्राप्ति होती है और मृदा एवं पर्यावरण स्वास्थ्य में भी सुधार होता है।

फल एवं सब्जी उत्पादन : आज सबसे जरुरी यह है कि प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुए पौष्टिक आहार का उत्पादन किया जाए। मिश्रित खेती में किसान अपने परिवार की जरूरतों के अनुसार एवं उचित विपणन की सुविधा के अनुसार खेत के कुछ भाग में सब्जियां जैसे टमाटर, बैंगन, भिंडी, लौकी, कद्दू आदि

सब्जियां उगा सकता है और कुछ भाग में या खेत के चारों ओर मेड़ पर फलवृक्ष जैसे अमरुद, आंवला, अनार, पपीता, केला इत्यादि पेड़ लगा सकता है। फल एवं सब्जियाँ खनिज तत्वों, विटामिन्स, फाइबर आदि का मुख्या स्रोत होते हैं और मानव शरीर को पोषक तत्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसान मृदा एवं जलवायु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए फलों एवं सब्जियों का कृषि प्रणाली में समावेश करके प्रति इकाई संसाधन (मृदा, जल, उर्वरक आदि) उपयोग से अधिक उत्पादकता व आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

औषधीय एवं सुगन्धित फसलेंः मिश्रित खेती में औषधीय एवं सुगन्धित फसलें क्षेत्र की मृदा एवं जलवायु और फसल उत्पादों के उचित विपणन के लिए बाजार की उपलब्धता के अनुसार फसल पद्धति में सम्मिलित की जा सकती हैं। औषधीय एवं सुगन्धित फसलों की खेती कीटों के आक्रमण, बीमारियों, फसलों के मूल्य में उतार–चढाव, और संभावित लाभ के रूप में कम जोखिम वाली खेती साबित हो सकती हैं जैसे ग्वारपाठा को कम वर्षा वाले क्षेत्रों एवं सिमित संसाधनों की स्थिति में आसानी से उगाया जा सकता है। ये फसलें उच्च मूल्य वाली होती हैं। जब इन फसलों को कृषि प्रणाली में शामिल किया जाता हैं तो किसानों की आमदनी में वृद्धि होती है।

मिश्रित खेती में फसल उत्पादन, पशुपालन, फल व सब्जी उत्पादन के अलावा मुर्गीपालन, मछली पालन, मधुमक्खी पालन इत्यादि का भी समावेश कर सकते हैं। ये कृषि उत्पादकता एवं लाभ को कई गुना बढ़ा देते हैं। मिश्रित खेती एक तरफ पोषक तत्व भरपूर खाद्य उत्पाद प्रदान करके परिवार की खाद्य और पोषक तत्वों की सुरक्षा को बढ़ाती हैं और दूसरी तरफ ये किसानों की आय और रोजगार भी बढ़ाती हैं। किसानों के मन से फसल की विफलता के डर को भी दूर करती हैं।

निष्कर्ष

हमारे देश में लघु व सीमांत कृषि जोतों से लाभदायक एवं दीर्घकालीन टिकाऊ खेती के लिए मिश्रित कृषि प्रणाली अपनानी चाहिए। जिससे खेती की उत्पादकता, भोजन–पोषण, आर्थिक एवं मृदा व पर्यावरणीय सुरक्षा में सुधार हो मिश्रित कृषि प्रणाली किसानों को वर्षभर रोजगार प्रदान करती हैं। फसल प्रणाली में अनाज वाली फसलों, दलहनी, तिलहनी फसलों, फल सब्जियों आदि का समावेश करने से कृषि की उत्पादकता एवं लाभप्रदता बढ़ती हैं। फसल उत्पादन, पशुपालन, एवं अन्य कृषि उद्योगों का एकीकरण फसल उत्पादन में न केवल सुधार लाता हैं बल्कि यह मृदा उत्पादकता एवं पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ाता हैं और दीर्घकालीन टिकाऊ कृषि को सुरक्षित करता हैं।

अगेती फूलगोभी उत्पादन की उन्नत तकनीक

श्रवण सिंह, बी. बी. शर्मा, वी. के. शर्मा और बी. एस. तोमर
शाकीय विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.पं.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–12

फूलगोभी विश्व भर में उगाई जाने वाली महत्वपूर्ण सब्जी फसलों में से एक है । फूलगोभी विभिन्न पोषक तत्वों (पोटेशियम, सोडियम, कैल्शियम, फॉस्फोरस आदि) और जैव–सक्रिय पदार्थो (ग्लूकोसिनोलेट्स) की एक प्रमुख स्त्रोत है। कुछ ग्लूकोसिनोलेट्स कैंसर से बचाने में सहायक हैं। भारत में इसका उत्पादन 452 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल पर किया जाता है जिससे 8499 हजार मीट्रिक टन उत्पादन हैं। वैसे तो फूलगोभी का खाद्य महत्तव है लेकिन इसका स्वास्थय महत्व भी अच्छा है । अगेती किस्मों के विकसित होने से और नवोन्वेषी तकनीकियों की उपलब्धता के कारण अब इसकी खेती अगेती फसल (वर्षा ऋतु) में भी किसान करने लगे हैं। अगेती फसल की पैदावार तो थोड़ी कम (8–12 टन प्रति हेक्टेयर) होती हैं लेकिन अधिक बाजार भाव, अल्प फसल अवधि (65–75 रोपाई के बाद) और मौजूदा फसल प्रणाली में उत्तम समावेश होने के कारण इसकी लोकप्रियता किसानों में निरंतर बढ़ती जा रही है।

अगेती फूलगोभी की उन्नत किस्में

फूल बनने के लिए तापमान की आवश्यकता और परिपक्वता के आधार पर फूलगोभी के चार वर्ग बनाये गए हैं। इनमें अगेती समूह की फूलगोभी की बुवाई मई–जून में करते है और यह सितम्बर–अक्टूबर में तैयार हो जाती है। जैसा कि सारणी–1 में दिया गया है फूलगोभी की किस्मों का चयन सोच–समझकर करना चाहिए । क्योंकि अगेती किस्मों को मध्य या मध्य–पछेता लगाने से बटनिंग (बहुत छोटे फूल बनना) और राईसीनेस (फूल पर मखमली चादर बनना) की समस्या आती हैं और विपरीत स्थिति में पौधे कि वानस्पतिक बढ़वार तो होती रहती हैं परन्तु फूल का बनना उचित समय आने पर ही होता है।

पूसा मेघनाः सितम्बर के अंतिम सप्ताह में कटाई के लिए तैयार, औसत पैदावार 100–120 क्विंटल/हेक्टेयर, फूल ठोस, 300–400 ग्राम के सफेद क्रीम रंग युक्त, पौधे छोटे आकार के तथा फसल अवधि 60–65 दिन होती है।

पूसा अश्विनीः अक्टूबर के मध्य में कटाई के लिए तैयार, औसत पैदावार 140–160 क्विंटल/हेक्टेयर, फूल ठोस, 500–600 ग्राम के सफेद हल्के क्रीम रंग युक्त, पौधे आकार में मध्यम तथा 70–80 दिन में फसल तैयार होती है।

पूसा कार्तिकीः अक्टूबर के अंतिम सप्ताह में कटाई के लिए तैयार, औसत पैदावार 150–170 क्विंटल/हेक्टेयर, फूल ठोस, 550–700 ग्राम के और सफेद रंग युक्त, पौधे आकार में मध्यम से बड़े तथा 70–80 दिन में फसल तैयार होती है।

पूसा कार्तिक संकरः अगेती फूलगोभी की यह एक संकर प्रजाति है जो अक्टूबर के मध्य में तैयार हो जाती है। इसके फूल बहुत ठोस, 500–600 ग्राम के और सफेद हल्के क्रीम रंग के होते है, पौधें आकार में मध्यम, फसल अवधि 65–75 दिन और औसत पैदावार 140–160 क्विंटल/हेक्टेयर है।

पूसा दिपालीः यह अक्टूबर के मध्य से अंत तक तैयार होने वाली किस्म है। इसकी औसत पैदावार 100–120 क्विंटल/है है। इसके फूल ठोस, 450–600 ग्राम के सफेद क्रीम रंग के होते हैं। इसमें कुछ हद तक फूल स्वःआच्छादित होते हैं।

सारणी–1ः परिपक्वता के आधार पर फूलगोभी की उन्नत किस्में, बीज दर मात्रा अल्प और बीज दर, बुवाई एवं पौध रौपाई, रौपण दूरी, और पैदावारः-

परिपक्कता समूह	किस्में	बीज दर (ग्राम)	बुआई समय	रोपाई का समय	रौपण दूरी (से. मी.)	पौध की आयु (दिन)	परिपक्वता समय	उपज (कु. / है)
अगेती–1अ (सितम्बर)	पूसा मेघना	600-750	मई अंत	मध्य जुलाई तक	45 × 30	40-42	सितम्बर से मध्य अक्टूबर	90-110
अगेती–1ब (अक्टूबर)	पूसा अश्विनी, पूसा कार्तिकी, पूसा दीपाली, पूसा कार्तिक संकर	600-700	जून मध्य	अंतिम जुलाई – मध्य अगस्त	45 × 45	35-40	अक्टूबर से मध्य नवम्बर	120-160
मध्य–अगेती	पूसा शरद, पूसा हाईब्रिड–2	500-600	अगस्त	सितम्बर	60 × 45	28-35	मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर	200 – 250
मध्य–पछेती	पूसा पौषजा, पूसा शुक्ति	400-500	सितम्बर	अक्टूबर	60 × 45	25-30	मध्य दिसंबर से मध्य जनवरी	280-320
पछेती	पूसा स्नोबाल के–1, पूसा स्नोबाल केटी –25, पूसा स्नोबॉल हाइब्रिड –1 (F_1)	350-400	अक्टूबर से नवम्बर	नवम्बर से दिसम्बर	60 × 45	21-25	फरवरी से मध्य मार्च	300-350

इन किस्मों के बीज की उपलब्धता भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली या राष्ट्रीय बीज निगम के केन्द्रों पर मई–जून के महीने में रहती है।

बीज और पौधशाला प्रबंधनः

- अगेती फूलगोभी में बीज दर अधिक रखी जाती है क्योकि अंकुरण कम (54–63 प्रतिशत) होता है, पौधशाला में पौध मृत्युदर भी अधिक (30–40 प्रतिशत) होती है और प्रति हेक्टेयर पौधों की संख्या भी अधिक लगती है। सामान्यतः 600–750 ग्राम बीज से तैयार की गई पौध एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में रोपाई हेतु पर्याप्त होती है। संकर किस्मों के लिए बीज दर 450–500 ग्राम/है पर्याप्त है।
- अगेती फूलगोभी की पौधशाला पर्याप्त नमीवाले स्थान पर बनानी चाहिए। उचित जलनिकास की व्यवस्था करें। संभव हो तो मृदा जनित बीमारियों से प्रभावित भूमि में पौधशाला न बनायें।
- मई महीने में पौधशाला के लिए चयनित भूमि का प्लास्टिक शीट से ढ़ककर भूमि सौलेराइजेशन करें। बुवाई से एक सप्ताह पहले मिट्टी को केप्टान या थीराम या बॉविस्टिन के 3 ग्रा./ली. पानी के घोल से तर भी करें।
- बुवाई के एक सप्ताह पहले 1 कि.ग्रा. ट्राइकोडर्मा वीरीडी को 100 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिला कर छायादार जगह पर तैयार करें और इसे नर्सरी बैड में मिलायें। इससे आर्द्रगलन और मृदा जनित रोगों से बचाव होता है।
- पौध तैयारी के लिए बैड 3.0 – 5.0 मी. लम्बाई में, 45 से.मी. चौड़ाई में तथा 20 – 30 सें.मी. उठी हुई बनायें। एक हेक्टेयर क्षेत्रफल में रोपाई के लिए लगभग 25 से 30 नर्सरी बैड पर्याप्त होती हैं।
- प्रत्येक बैड में 20–25 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद मिलायें।
- बुवाई से पहले बीज को केप्टान या बाविस्टीन 2 ग्रा. या ट्राईकोड्रमा 5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज के दर से उपचारित करें।
- बैड पर बुवाई पंक्तियों में करें और इसके लिये

लगभग 25–30 बीज प्रत्येक 5 से 7 सें.मी. की दूरी पर 1.5 से 2.0 से.मी. गहरी बनी पंक्ति समान दुरी डालें। सूखी छनी हुई गोबर की खाद में बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति कि. ग्रा. मिलाकर पंक्तियों को ढक दें। नर्सरी बैड को सुखी घास सें 4 दिन तक ढकें जिसे अंकुरण होने पर हटा दें।

- अगेती फूलगोभी की पौधशाला अधिक गर्मी से बचाव के लिए सिरकी (सरकन्डा घास से बनी) या हरे रंग के 75 प्रतिशत शैड नेट (परा–बैंगनी किरणों से सुरक्षित) से पौधशाला को ढकना जरुरी है। इसके लिए नेट या सिरकी को सुबह 9–10 बजे से सांयकाल तक ढके। साथ ही अकस्मात बारिश से बचने के लिए पॉलीशीट की व्यवस्था करें। इससे अंकुरण अच्छा होता है और प्रति इकाई पौध भी अधिक मिलती है।
- पौधशाला की उचित देखभाल करें आवश्यकतानुसार प्रतिदिन सिंचाई करें और खरपतवारों को निकालें। क्यारियों पर 2–3 बार पंक्तियों के बीच हल्की गुड़ाई करें।
- पौध को सख्त बनाने (हार्डनिंग) हेतु अंतिम 5–6 दिनों में सिंचाई एक दिन के अंतराल पर करें। विशेषरुप से अगेती फूलगोभी की पौध रोपाई सायःकाल में ही करें।
- रोपाई से पहले पौधों की जड़ों को बॉविस्टीन 2 ग्राम या ट्राइकोडर्मा 10 ग्रा. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 30 मिनट तक डुबायें ताकि रोपाई के बाद आने वाले जड़ गलन रोग से बचाव किया जा सके।

उन्नत शस्य क्रियाएं

- फूलगोभी भूमि से अधिक दोहन करती है और इसकी पूर्ति के लिए प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद या कम्पोस्ट 25 से 30 टन, नत्रजन 120 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 80 कि.ग्रा. और पोटाश 60 कि.ग्रा. की आवश्यकता होती है।
- गोबर की खाद या कम्पोस्ट की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के दौरान प्रथम जुताई (रोपाई से तीन सप्ताह पूर्व) के दौरान भूमि में मिला दें।
- खेत की अंतिम जुताई के समय नत्रजन (60 कि.ग्रा. यूरिया/है.) की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस (180 कि.ग्रा. डी.ए.पी./है.) व पोटाश (100 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश/है.) की पूरी मात्रा भूमि में अच्छी तरह से मिला दें।
- शेष नत्रजन को बराबर दो हिस्सो में बांट कर एक हिस्सा रोपाई के एक महीने पश्चात निराई–गुड़ाई के साथ डालें तथा दूसरा हिस्सा फूल बनने की स्थिति में (लगभग 45–50 दिन बाद) मिट्टी चढ़ाते समय मिलाएं।
- पौधों की बढ़वार कम होने की स्थिति में 2–3 बार 15–20 ग्राम यूरिया प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
- गोभी के फूल में बोरोन की कमी के कारण भूरापन तथा मोलिब्डेनम की कमी के कारण पौधों में व्हीपटेल (संकरी पत्तियाँ) की समस्या आती है। इनसे बचाव के लिए 1.5 से 2.5 कि.ग्रा. बोरेक्स और 1.0 से 2.0 कि.ग्रा. सोडियम या अमोनियम मोलिबडेट प्रति हेक्टेयर की दर से अन्य उर्वरकों के साथ भूमि में मिलायें।
- गोभी की अगेती फसल की रोपाई के समय वातावरणीय कारक अनुकूल नहीं होते इसलिए अधिक आयु की पौध (5–6 सप्ताह) के साथ उठी हुई मेड़ियों (15–20 सें.मी.) पर ही रोपाई करें।
- अगेती फूलगोभी के पौधे छोटे से मध्यम आकार के होते हैं इसलिए फसल अंतराल कम रखें और प्रति हेक्टेयर अधिक पौधे (45 – 65 हजार) लगाकर पैदावार बढ़ायें।
- अगेती फूलगोभी के लिए पंक्तियों के बीच 45 सें. मी. एवं पौधों से पौधों के बीच 30 सें.मी. (सिंतबर परिपक्वता समूह) से 45 सें.मी. (अक्टूबर परिपक्वता समूह) रखें। रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिचाई करें। अगेती फसल में रोपाई उपरांत कुछ पौधे मर

जाते हैं या पौधे की कोपल क्षतिग्रस्त (ब्लांइडिंग) हो जाती है इसलिए पौधशाला में बचे पौधों से 7–10 दिन में पुनःरोपण द्वारा गेप फिंलिंग करें।

- बरसात के समय खरपतवार अधिक होते हैं परन्तु रोपाई से एक–दो दिन पहले स्टॉम्प 3.3 लीटर या बेसालीन 2.5 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव कर हल्की सिंचाई करें जो शुरुआती अवस्था में (15–20 दिन) खरपतवारों को रोकती है और इसके बाद 15 दिन के अंतराल पर 2–3 गुड़ाई करें।
- रोपाई के 30 दिन बाद मिट्टी चढ़ाने से फसल की बढ़वार अच्छी होती है एवं पैदावार बढ़ती है।
- फूलगोभी जलभराव की स्थिती को सहन नहीं कर पाती है इसलिए जल निकास की उचित व्यवस्था अनिवार्य रुप से करें।
- अगेती फसल में सिंचाई रोपाई के तुरन्त बाद् तथा उसके पश्चात साप्ताहिक अन्तराल पर आवश्यकता अनुसार सिंचाई करें।

कटाई और विपणन

- कटाई में देरी से फूल पीले और ढ़ीले हो जाते हैं जिनका विपणन मुश्किल और बाजार भाव बहुत कम मिलता है। इसलिए प्रजाति के अनुसार उचित आकार के फूल ठोस अवस्था के रहते काट लें।
- गोभी के फूलों को ठूंठ के साथ काटें क्योकि यह और बाहरी पत्तियां परिवहन के दौरान फूलों को सुरक्षित रखती है।
- कटाई उपरांत फूलों को बाजार के लिए तैयार करते समय केवल फूल की सतह तक पत्तों को रखें और फूल से ऊपर निकले पत्तों के भाग को हटायें इससे फूलों की गुणवत्ता बनी रहेगी।
- सभी फूल एक साथ तैयार नहीं होते हैं अतः 2–4 दिन के अंतराल पर कटाई करें। कटाई के बाद फूलों को रंग, सुगठता व आकार के आधार पर श्रेणीकृत कर बाजार में बेचें।
- अगेती फूलगोभी की पैदावार मध्य और पछेती समूह की अपेक्षा कम होती है लेकिन बाजार भाव अधिक होता है इसलिए किसान इसकी खेती से अच्छी आमदनी ले सकते हैं।
- औसतन 12–15 टन प्रति हेक्टेयर पैदावार इस फसल से हो जाती है।
- फूलगोभी में विवर्णीकरण (ब्लांचिग) से फूल सफेद व आकर्षक बनते हैं। इसके लिए जब फूल मध्यम से ज्यादा आकार के हो जाएं तो उसे पास के बड़े पत्तों को रबर या रस्सी से बांधकर ढ़क दें और 7–10 दिन बाद फूलों की कटाई करें।
- अगेती फूलगोभी की खेती से औसतन आय 60,000 से 80,000 रुपये प्रति हेक्टेयर मात्र तीन महीने में उचित फसल प्रबंधन और उचित बाजार भाव मिलने पर हो सकती है।

प्रमुख रोग एवं कीट प्रबन्धन

- पौधशाला में पेंटड बग एक मुख्य कीट है जिसकी रोकथाम के लिए इमिडाक्लोप्रिड 70 प्रतिशत 5 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।
- कटुवा इल्ली गोभी के पौधों को रात्रिकाल में नुकसान पहुंचाती है। इसके नियंत्रण हेतु डाईमेथोइट 30 ई.सी. 2 मि.ली. प्रति ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें । प्रकाश प्रपंच का प्रयोग व्यस्क शलभों को पकड़ने के लिए करें तथा फोरेट 10जी 10 कि.ग्रा./है. की दर से अंतिम जुताई के समय भूमि में मिलाए।
- हीरक पृष्ठ पतंगा कीट गोभी में 50–60% तक नुकसान पहुंचाता है इसकी सुंडियां पत्तियों की निचली सहत पर छोटे– छोटे छिद्र बना देती हैं। इसके नियंत्रण हेतु गोभी की प्रत्येक 25 कतारों के बाद दो कतार सरसों की जाल फसल (ट्रेप क्रॉप) के रुप में गोभी फसल की रोपाई से 15 दिन पहलें बुवाई करें। साथ ही इन कतारों की जगह में रोपाई के 15 दिन बाद फिर से सरसों की बुवाई करें। स्पाइनोसिड (25 एस.सी.) 3.0 मि.ली. प्रति 10

लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

- तंबाकू की सुण्डी छोटी अवस्था में पत्तों को खुरच कर खाती है तथा बड़ी अवस्था में बड़े आकार के गोलाकार छिद्र बनाती है। इसके नियंत्रण हेतु अण्डे के समूह को एकत्र कर नष्ट करें। एन.पी.वी. 250 एल.ई./है. की दर से छिड़काव करें एवं मेलाथियान 2.0 मि.ली./ली. या इन्डोक्साकार्ब 14.5 एस. 1–1.5 मि.ली. प्रति लीटर के हिसाब से पानी में मिलाकर छिड़काव करें। पाँच गंधपास प्रति हेक्टेयर की दर से लगाये।
- आर्द्रगलन रोग का प्रकोप नर्सरी अवस्था में अत्यधिक होता है। इसके नियंत्रण हेतु बीजों की बुवाई से पूर्व 3 ग्राम थीरम या केप्टान प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें।
- काला सड़न के कारण पत्तियों के बाहरी किनारों पर ‘V’ आकार के हरिमाहीन एवं पानी में भीगे जैसे धब्बे दिखाई देते हैं। इसके नियंत्रण हेतु बीजों की बुवाई से पूर्व स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 250 मि.ग्रा. / ली. पानी के घोल में 2 घंटे उपचारित कर छाया में सुखाकर बुवाई करें। स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (40 ग्राम) + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (200 ग्राम) प्रति 200 ली. पानी में मिलाकर 7–10 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।
- अल्टरनेरिया धब्बा रोग से पत्तियों पर गोल आकार के छोटे से बड़े भूरे वलयाकार धब्बे बन जाते हैं। अंत में धब्बे काले पड़ जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु मेंकोजेब 75 % 2 ग्रा./ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- कभी–कभार फूलगोभी की सतह ढ़ीली व मखमली हो जाती है। इसके नियंत्रण हेतु नत्रजन की अनुशंसित मात्रा ही डालें एवं उपयुक्त किस्म का चयन कर सही समय पर लगावें।

धान के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

[1]बिष्णु माया, [2]अतुल कुमार वं [3]अनिल कुमार चौधरी

[1]पौधा रोग विभाग, [2]बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संभाग,
[3]सस्य विज्ञान संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

धान की फसल पर अनेक तरह की समस्याएँ आती हैं, रोग आक्रमण कर सकते हैं तथा इन रोगों के रोगकारक जीव की प्रकृति में विभिन्नता होने के कारण इनकी रोकथाम के उपाय भी भिन्न–भिन्न होते हैं। अतएवः रोगों का निदान एवं उसके प्रबन्धन के विषय में जानकारी अत्यावश्यक है। इस सन्दर्भ में सबसे पहले हमें स्वस्थ बीज की बात करनी चाहिए, क्योंकि अगर किसान भाइयों के पास स्वस्थ बीज उपलब्ध हो तो आधी समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जाती हैं।

स्वस्थ बीज एवं उपचार

बुवाई से पहले स्वस्थ बीजों की छंटनी कर लेनी चाहिए। इसके लिए 10 प्रतिशत नमक के घोल का प्रयोग करते हैं। नमक का घोल बनाने के लिए 2.0 कि.ग्रा. सामान्य नमक 20 लिटर पानी में घोल लें और इस घोल में 30 कि.ग्रा. बीज डालकर अच्छी तरह हिलाएं, इससे स्वस्थ एवं भारी बीज नीचे बैठ जाएगा और थोथे एवं हल्के बीज ऊपर तैरने लगेंगे। इस तरह साफ व स्वस्थ छांटा हुआ 20 कि. ग्रा. बीज महीन दाने वाली किस्मों में तथा 25 कि.ग्रा. बीज मोटे दानों की किस्मों में एक हेक्टेयर की रोपाई के लिए पौध तैयार करने के लिए पर्याप्त होता है। बीज उपचार के लिए 10 ग्राम बॉविस्टीन और 2.5 ग्राम पोसामाइसिन या 1 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लीन या 2.5 ग्राम एग्रीमाइसीन 10 लिटर पानी में घोल लें। अब 20 कि.ग्रा. छांटे हुए बीज को 25 लिटर उपरोक्त घोल में 24 घंटे के लिए रखें। इस उपचार से जड़ गलन (फूट राट), झोंका (ब्लास्ट) एवं पत्ती झुलसा रोग (बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट) आदि बीमारियों के नियन्त्रण में सहायता मिलती है।

कुछ प्रमुख रोगों की विस्तृत जानकारी इस प्रकार है।

धान प्रध्वंस झोंका (ब्लास्ट)

प्रध्वंस रोग *मैग्नोपोर्थे ओरायजी* द्वारा उत्पन्न होता है। सामान्यतया बासमती एवं सुगन्धित धान की प्रजातियां प्रध्वंस रोग के प्रति उच्च संवेदनशील होती हैं।

लक्षण : रोग के विशेष लक्षण पत्तियों पर दिखाई देते हैं, परन्तु पर्णच्छद, पुष्पगुच्छ, गाठों तथा दाने के छिलकों पर भी इसका आक्रमण पाया जाता है। कवक का पत्तियों, गाठों एवं ग्रीवा पर अधिक संक्रमण होता है। पत्तियों पर भूरे रंग के आँख या नाव जैसे धब्बे बनते हैं जो बाद में राख जैसे स्लेटी रंग के हो जाते हैं। क्षतस्थल के बीच के भाग में धूसर रंग की पतली पट्टी दिखाई देती है। अनुकूल वातावरण में क्षतस्थल बढ़कर आपस में मिल जाते हैं, परिणामस्वरुप पत्तियां झुलस कर सूख जाती हैं।

गाँठ प्रध्वंस संक्रमण में गाँठ काली होकर टूट जाती हैं। दौजी की गाँठों पर कवक के आक्रमण से भूरे धब्बे बनते हैं, जो गाँठ को चारों ओर से घेर लेते हैं। ग्रीवा (गर्दन) ब्लास्ट में, पुष्पगुच्छ के आधार पर भूरे से लेकर काले रंग के क्षत बन जाते हैं जो मिलकर चारों ओर से घेर लेते हैं और पुष्पगुच्छ वहां से टूट कर गिर जाता है जिसके परिणामस्वरूप दानों की शत–प्रतिशत हानि होती है। पुष्पगुच्छ के निचले डंठल में जब रोग का संक्रमण होता है, तब बालियों में दाने नहीं होते तथा पुष्प और ग्रीवा काले रंग की हो जाती है।

प्रबंधनः

- स्वस्थ पौधों से प्राप्त बीज का ही प्रयोग करें। नर्सरी को नमीयुक्त क्यारी में उगाना चाहिये और क्यारी छायादार क्षेत्र में नही होनी चाहिये।
- जुलाई के प्रथम पखवाड़े में रोपाई पूरी कर लें। देर से रोपाई करने पर ब्लास्ट रोग के लगने की संभावना बढ़ जाती है।
- ट्राइसायक्लेजोल (75 डब्ल्यू पी 2 ग्रा. रसायन/कि.ग्रा. बीज) उपचारित बीज बोएं या 2 ग्राम प्रति

कि.ग्रा. बीज की दर से कार्बेन्डाजिम के साथ बीजोपचार।

- 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में ट्राइसायक्लेजोल (या धानटीम 75 घुलनशील पाउडर) या 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में कार्बेन्डाजिम (बैविस्टिन या धानुस्टिन 50 घुलनशील पाउडर) फफूँदनाशी का छिड़काव।
- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें। खेत में रोग के लक्षण दिखायी देने पर नाइट्रोजन उर्वरक का प्रयोग न करें
- फसल स्वच्छता, सिंचाई की नालियों को घास रहित करना, फसल चक्र आदि उपाय अपनाना।
- रोग रोधी किस्मों जैसे–पूसा बासमती 1637, आई आर 64, पंकज, जमुना, सरजु 52, आकाशी और पंत धान 10 आदि को उगाना चाहिए।
- पूसा सुगंध–5 (पूसा 2511) ब्लास्ट के प्रति मध्यम प्रतिरोधी है।

बकाने

यह रोग *जिबरेला फ्यूजीकुरेई* की अपूर्णावस्था फ्यूजेरियम *मोनिलिफोरमे* से होता है।

लक्षण : बकाने रोग के प्ररूपी लक्षणों में प्राथमिक पत्तियों का दुबर्ल हरिमाहीन तथा असमान्य रूप से लम्बा होना है हालाँकि इस रोग से संक्रमित सभी पौधे इस प्रकार के लक्षण नहीं दर्शाते हैं क्योंकि संक्रमित कुछ पौधों में क्राउन विगलन भी देखा गया है जिसके परिणामस्वरूप धान के पौधे छोटे (बौने) रह जाते हैं। फसल के परिपक्वता के समीप होने के समय संक्रमित पौधे, फसल के सामान्य स्तर से काफी ऊपर निकले हुए हल्के हरे रंग के ध्वज–पत्र युक्त लम्बी दौजियाँ (टिलर्स) दर्शाते हैं। संक्रमित पौधों में दौजियों की संख्या प्रायः कम होती है और कुछ हफ्तों के भीतर ही नीचे से ऊपर की और एक के बाद दूसरी, सभी पत्तियाँ सूख जाती हैं। कभी–कभी संक्रमित पौधे परिपक्व होने तक जीवित रहते हैं किन्तु उनकी बालियाँ खाली रह जाती हैं संक्रमित पौधों के निचले भागों पर, सफेद या गुलाबी कवक जाल वृद्धि भी देखी जा सकती है।

प्रबंधन

- रोग रोधी किस्मों का चयन करना चाहिए ।
- रोग में कमी लाने के लिए साफ–सुथरे रोगमुक्त बीजों का प्रयोग करना चाहिए जिन्हें विश्वसनीय बीज–उत्पादकों या अन्य विश्वसनीय स्रोतों से खरीदा जाना चाहिए।
- बोए जाने वाले बीजों से भार में हलके एवं संक्रमित बीजों को अलग करने के लिए नमकीन पानी का प्रयोग किया जा सकता है। ताकि बीजजन्य निवेश द्रव्य को कम किया जा सके।
- गर्म जल से बीजोपचार प्रभावी है। इसके लिए पहले बीजों को 3 घन्टे तक सामान्य जल में भिगो दें और तत्पश्चात बीजों में विद्यमान कवक को नष्ट करने के लिए उन्हें 50–57^{0} सें तापमान पर गर्म जल से 15 मिनट तक भिगोकर उपचारित करें।
- कवकनाशियों के साथ बीजोपचार की संस्तुति की जाती है। इसके लिए 0.2 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल में बीजो को 5 घन्टे तक भिगो कर रखते हैं। इस प्रकार से बीजोपचार के बाद, बुआई के पहले इन बीजों को 24 घन्टे तक सामान्य जल में भिगो कर रखें।
- रोपाई से पहले पौध को 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल में 12 घन्टे तक उपचार भी प्रभावी पाया गया है।
- खेत को साफ–सुथरा रखें और कटाई के पश्चात धान के अवशेषों एवं खर पतवार को खेत में न रहने दें।
- बकाने रोग से ग्रस्त पौधों के देखते ही तुरंत खेत से निकाल कर नष्ट कर दें ताकि अन्य स्वस्थ पौधे संक्रमित न हो सकें।

जीवाणुज पत्ती अंगमारी (जीवाणु पर्ण झुलसा)

यह रोग *जैन्थोमोनास ओरायजी* पीवी *ओरायजी* नामक जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण : यह रोग मुख्यतः दो अवस्थाओं में प्रकट होता है। पर्ण अंगमारी (पर्ण झुलसा) अवस्था और क्रेसेक अवस्था।

पर्ण अंगमारी (पर्ण झुलसा) अवस्था : पत्तियों के उपरी सिरो पर जलसिक्त क्षत बन जाते हैं। पीले या पुआल रंग के ये क्षत लहरदार होते हैं जो पत्तियों के एक या दोनों किनारों के सिरे से प्रारंभ होकर नीचे की ओर बढ़ते हैं और अन्त में पत्तियां सूख जाती हैं। गहन संक्रमण की स्थिति में रोग पौधों के सभी अंगो जैसे पर्णाच्छद, तना और दौजी को सुखा देता है।

क्रेसेक अवस्था : यह संक्रमण पौधशाला अथवा पौध लगाने के तुरन्त बाद ही दिखाई पड़ता है। इसमें पत्तियां लिपटकर नीचे की ओर झुक जाती हैं। उनका रंग पीला या भूरा हो जाता है तथा दौजियां सूख जाती हैं। रोग की उग्र स्थिति में पौधे मर जाते हैं।

प्रबंधन

- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें तथा खेत में ज्यादा समय तक जल न रहने दें तथा उसको निकालते रहें।
- उपचारित बीज का प्रयोग करें। इसके लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (2.5 ग्रा.) + कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (25 ग्राम) प्रति 10 लिटर पानी के घोल में बीज को 12 घंटे तक डुबोएं। या 10 लिटर पानी में 2.5 ग्राम स्ट्रेप्टोसायक्लिन तथा 2.5 ग्राम ब्लाइटॉक्स घोलकर बीजो को बुआई से पहले 12 घंटे के भिगो दें। या बीजो को स्युडोमोनास फ्लोरेसेन्स 10 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित कर लगायें।
- धान रोपने के समय पौधे के बीज की दूरी 10–15 सेमी. अवश्य रखें।
- इस बीमारी के लगने की अवस्था में नाइट्रोजन का प्रयोग कम कर दें।
- जिस खेत में बीमारी लगी हो उसका पानी दूसरे खेत में न जाने दें। इससे बीमारी के फैलने की आशंका होती है। साथ ही उस खेत को भी पानी न दें।
- खेत में बीमारी को फैलने से रोकने के लिए खेत से समुचित जल निकास की व्यवस्था की जाए तो बीमारी को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।
- रोग के लक्षण प्रकट होने पर 100 ग्राम स्ट्रेप्टोसायक्लिन और 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड का 500 लीटर जल में घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें। 10 से 12 दिन के अन्तर पर आवश्यकतानुसार दूसरा एवं तीसरा छिड़काव करें।
- उन्नत पूसा बासमती 1 (पूसा 1460) अत्यंत रोग प्रतिरोधी किस्म है, रोग रोधी किस्मों जैसे– आई. आर.–20, मंसूरी, प्रसाद, रामकृष्णा, रत्ना, साकेत–4, राजश्री और सत्यम आदि का चयन करें।

आच्छद झुलसा, गुतान झुलसा (शीथ ब्लाइट)

यह रोग *राइजोक्टोनिया सोलेनी* नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण : पानी अथवा भूमि की सतह के पास पर्णच्छद पर रोग के प्रमुख लक्षण प्रकट होते है। इसके प्रकोप से पत्ती के शीथ (गुतान) पर 2–3 सें.मी. लम्बे हरे से भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जो कि बाद में चलकर भूसे के रंग के हो जाते हैं। धब्बों के चारों तरफ बैंगनी रंग की पतली धारी बन जाती है। अनुकूल वातावरण में क्षतस्थलों पर कवक जाल स्पष्ट दिखते हैं, जिन पर अर्ध अथवा पूर्ण गोलाकार भूरे रंग के स्क्लेरोशिया बनते हैं। पत्तियों पर क्षतस्थल विभिन्न आकृति में होते है। ये क्षत धान के पौधों पर दौजियां बनते समय एवं पुष्पन अवस्था में बनते हैं।

प्रबंधन :

- सस्य क्रियाओं को उचित समय पर सम्पन्न करना तथा पिछली फसलों के अवशेषों को नष्ट करना।
- आवश्यकतानुसार नाइट्रोजन उर्वरकों का उपयोग करें और रोग प्रकट होने पर टॉप ड्रेसिंग को कुछ समय के लिए स्थगित करें।

- खेतों में घास कुल के खरपतवार एवं निकट जलकुंभी को नष्ट करना।
- 2 ग्रा प्रतिकिलो ग्राम बीज की दर से कार्बेंडाजिम (बाविस्टीन) 50 डब्ल्यू पी का बीजोपचार उपयोगी है।
- 2.5 मिली/ली पानी की दर से वैलिडामासिन (राइजोसिन या शीथमार), 2 ग्रा/ली पानी की दर से या हैक्साकोनेजोल (कोंटाफ या सितारा 5 ई सी) का छिड़काव उपयोगी है।

आभासी कंड

यह रोग *अस्टीलेजीनोइडिया वायरेंस* नामक कवक द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण : रोग के लक्षण बालियों के निकलने के बाद ही दृष्टिगोचर होते है। रोगग्रस्त बाली पहले संतरे रंग की, बाद में भूरे काले रंग की हो जाती है जो आकार में धान के सामान्य दाने से दोगुणा बड़ा होता है। ये दानें बीजायुक्त सतहों से घिरे होते हैं, जिनमें सबसे अंदर का सफेद पीला, बीच का केसरिया पीला तथा सबसे उपर भूरा काला होता है। अधिक संख्या में बीजाणु चूर्ण रुप में होते हैं जो हवा द्वारा वितरित होकर पुष्पों पर पहुंचते हैं और उन्हे संक्रमित करते हैं।

प्रबंधन :

- अत्याधिक रोग ग्रस्त बालियां सावधानी से निकालकर जलायें।
- सस्य क्रियाओं को सावधानी पूर्वक सम्पन्न करें।
- ब्लाइटोक्स (कॉपर आक्सीक्लोराईड) 1.25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का छिड़काव 50 प्रतिशत बालियां आने पर करें।
- रोग रोधी किस्में जैसे रत्ना, महसूरी उगाएं।

भूरी चित्ती (भूरे धब्बे)

यह रोग *हेल्मिन्थोस्पोरियम ओराइजी* नामक कवक से उत्पन्न होता है। पौधे के जीवन के सभी अवस्थाओं पर यह कवक संक्रमण करता है।

लक्षण : यह रोग देश के लगभग सभी हिस्सों मे फैली हुई है, खासकर पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु इत्यादि। भारत मे इस रोग पर पहली बार रिर्पोट चेन्नई के सुन्दरारमण (1919) द्वारा बनाई गई थी। उत्तर बिहार का यह प्रमुख रोग है। यह एक बीजजनित रोग है। इस रोग मे धान की फसल को बिचड़ा से लेकर दानों तक को नुकसान पहुँचाता है। इस रोग के कारण पत्तियों पर गोलाकार भूरे रंग के धब्बें बन जाते है। यह रोग फफूंद जनित है। पौधों की बढ़वार कम होती है, दाने भी प्रभावित हो जाते है, जिससे उनकी अंकुरण क्षमता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। पत्तियों पर तिल के आकार के भूरे रंग के काले धब्बें बन जाते है। ये धब्बें आकार एवं माप मे बहुत छोटी बिंदी से लेकर गोल आकार का होता है। धब्बों के चारो ओर हल्की पीली आभा बनती है। पत्तियों पर ये पूरी तरह से बिखरे होते है। धब्बों के बीच का हिस्सा उजला या बैंगनी रंग की होती है। बड़े धब्बों के किनारे गहरे भूरे रंग के होते हैं, बीच का भाग पीलापन लिए, गेंदा सफेद या घूसर रंग का हो जाता है। उग्रावस्था मे पौधों के नीचे से ऊपर पत्तियों के अधिकांश भाग धब्बों से भर जाते हैं। ये धब्बें आपस मे मिलकर बड़े हो जाते हैं, और पत्तियों को सुखा देते हैं। आवरण पर काले धब्बे बनते हैं। इस रोग का प्रकोप उपराऊ धान मे कम उर्वरता वाले क्षेत्रों मे मई–सितम्बर माह के बीच अधिक होता है। यह रोग ज्यादातर उन क्षेत्रों मे देखने को मिलता है, जहाँ किसान भाई खेतों मे उचित प्रबंधन की व्यवस्था नही कर पाते हैं। इस रोग मे दानों के छिलको पर भूरे से काले धब्बें बनते है, जिससे चावल बदरंग हो जाता है। बाली में दाने सिकुड़े हुए बनते हैं। उग्र संक्रमण में बालियां बाहर नहीं निकल पाती।

प्रबंधन :

- संतुलित उर्वराकों का प्रयोग करें।
- कवकग्रसित पौधों के अवशेष एवं वैकल्पिक आश्रयदाता घासों को नष्ट करें।
- बीज जनित संक्रमण रोकने हेतु 2.5 ग्राम कवकनाशी (थिरम) से प्रति कि.ग्रा. बीज उपचारित करें।

- बाद की अवस्था में डाईथेन एम 45 ¼0.2 प्रतिशत½ का छिड़काव उपयोगी है।

खैरा रोग

यह समस्या जस्ते की कमी के कारण होती है।

लक्षण : इसके लगने पर निचली पत्तियां पीली पड़नी शुरू हो जाती हैं और बाद में पत्तियों पर कत्थई रंग के छिटकवां धब्बे उभरने लगते हैं। रोग की तीव्र अवस्था में रोग ग्रसित पत्तियां सूखने लगती हैं। कल्ले कम निकलते हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है।

प्रबंधन :

- यह समस्या न हो इसके लिए 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई से पहले खेत की तैयारी के समय डालना चाहिए।
- लक्षण दिखने के बाद इसकी रोकथाम के लिए 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. चूना 600–700 लिटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर में छिड़काव करें। अगर रोकथाम न हो तो 10 दिन बाद पुनः 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 2.5 कि.ग्रा. चूना 600–700 लिटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

समन्वित खाद प्रबंधन, मिट्टी की उर्वरता और सतत कृषि

गणपत लोहार और सुरेश यादव

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –110012

विकासशील देशों में, कठोर जलवायु परिस्थितियों, जनसंख्या दबाव, भूमि की कमी और पारंपरिक मिट्टी प्रबंधन प्रथाओं की गिरावट ने अक्सर मिट्टी की उर्वरता को कम कर दिया है। फसल की पैदावार बढ़ाने और उन्हें उच्च स्तर पर बनाए रखने की समग्र रणनीति में मिट्टी के पोषक तत्वों के प्रबंधन के साथ–साथ अन्य पूरक उपाय भी शामिल होने चाहिए। एक एकीकृत दृष्टिकोण यह स्वीकार करता है कि पौधे के विकास के लिए आवश्यक पौधों के पोषक तत्वों में से अधिकांश का भंडार है और जिस तरह से पोषक तत्वों का प्रबंधन किया जाता है उससे पौधे की वृद्धि, मिट्टी की उर्वरता और कृषि स्थिरता पर एक बड़ा प्रभाव पड़ता है। कृषि उत्पादकता को बनाए रखने में किसानों, शोधकर्ताओं, संस्थानों और सरकार सभी की महत्वपूर्ण भूमिका है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एक एकीकृत तरीके से कार्बनिक, अकार्बनिक और जैविक घटकों के सभी संभावित स्रोतों से लाभ के अनुकूलन के माध्यम से वांछित उत्पादकता को बनाए रखने के लिए एक इष्टतम स्तर पर मिट्टी की उर्वरता और पोषक तत्वों की आपूर्ति के रखरखाव को संदर्भित करता है। इसके परिणामस्वरूप न केवल पारस्परिक दक्षता बढ़ती है, महंगी रासायनिक उर्वरकों के प्रतिस्थापन में भी मदद मिलती है। प्रति हेक्टेयर औसत उपज में सुधार प्राप्त किया जा सकता है, यदि कार्बनिक और अकार्बनिक उर्वरकों के संयुक्त उपयोग के माध्यम से मिट्टी की उर्वरता बनाए रखी जाती है।

अवयव

1. **रसायन उर्वरकः** यूरिया, डीएपी, सुपरफॉस्फेट और रॉक फॉस्फेट आदि।
2. **कार्बनिक पदार्थः** खेत की खाद, केंचुआकी खाद, विभिन्न तिलहनों के तेल के केक जैसे अरंडी, नीम आदि।
3. **जैविक (हरी खाद) खाद :** सनई, ढैंचा, सेसबानिया, आदि और हरी पत्तियां जैसे सुबबुल, आदि।
4. **जैव उर्वरकः** राइजोबियम, माइकोराइजा कवक आदि।

उद्देश्य

(i) मुख्य सिद्धांतः संतुलित उर्वरक।

(ii) सतत कृषि उत्पादन।

(iii) सभी संसाधनों से पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाना

(iv) पोषक तत्वों की हानि को कम करना।

(v) मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने।

(vi) फसल की पैदावार बढ़ाएं।

(vii) किसान के लाभ और कृषि आय में वृद्धि।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का लक्ष्य

स्थायी कृषि उत्पादन इस विचार को शामिल करता है कि प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग विशेष रूप से कम आय वाले समूहों के लिए, प्राकृतिक संसाधन आधार को कम किए बिना, उत्पादन और आय बढ़ाने के लिए किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में,एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन, पौधों को पोषक तत्वों के भंडार के रूप में रखता है जो फसल विकास के लिए आवश्यक हैं, ताकि भविष्य की पीढ़ियों की मिट्टी की उत्पादकता का त्याग किए बिना, एक कुशल और पर्यावरणीय तरीके से फसल उत्पादकता बढ़े।

पोषक तत्व संरक्षण और उत्थान

मिट्टी में पोषक तत्व संरक्षण, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण घटक है। मृदा संरक्षण कि तीन सामान्य तकनीकें, सबसे पहले, सीढ़ीदार खेती, गलीयारा खेती और न्यूनतम जुताई स्थानीय भौतिक वातावरण को बदल देती हैं और इस तरह मिट्टी और पोषक तत्वों को ले जाने से रोकती हैं। दूसरा, घास की फसल, संरचना, फसलें, फसल चक्र, अंतर फसल और जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण, हवा और पानी के कटाव के लिए शारीरिक बाधाओं के रूप में कार्य करते हैं और मिट्टी की विशेषताओं और संरचना को बेहतर बनाने में मदद करते हैं। अन्त में, जैविक खाद जैसे पशु और हरी खाद भी मिट्टी की संरचना में सुधार करके और द्वितीयक पोषक तत्वों और सूक्ष्म पोषक तत्वों की भरपाई करके मिट्टी के संरक्षण में सहायता करती है। अकार्बनिक और जैविक उर्वरक के बेहतर अनुप्रयोग और लक्ष्यीकरण से न केवल मिट्टी में पोषक तत्वों का संरक्षण होता है, बल्कि पोषक तत्व भी अधिक सक्षम हो जाते हैं। अधिकांश फसलें नाइट्रोजन का अकुशल उपयोग करती हैं। अक्सर लागू फसल में 50 प्रतिशत से कम नाइट्रोजन पाया जाता है। हालांकि इन नुकसान को कम किया जा सकता है। मिट्टी में उर्वरकों का गहरा स्थान एक भौतिक बाधा प्रदान करता है जो अमोनिया को फँसाता है। इनहिबिटर या यूरिया कोटिंग्स का उपयोग जो यूरिया को अमोनियम में बदलने को धीमा कर देता है, लीचिंग, अपवाह और वाष्पीकरण के माध्यम से होने वाले पोषक तत्वों के नुकसान को कम कर सकता है। इस प्रकार के नवाचारों के साथ, बेहतर समय, और अधिक केंद्रित उर्वरक, पोषक तत्वों की क्षमता में सुधार की संभावना विकसित दुनिया में 30 प्रतिशत और वर्ष 2020 तक विकासशील देशों में 20 प्रतिशत तक बढ़ सकती है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन गतिविधियों का कार्यान्वयनः विभिन्न चरण निम्नानुसार हैं,

1. **निदान चरणः** पृष्ठभूमि की जानकारी का संग्रह।
2. बाधाओं का विश्लेषण।
3. क्षमता और व्यवहार्यता सारांश तैयार करना
4. ऑन–फार्म प्रदर्शन।
5. गतिविधियों का मूल्यांकन।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधनकी सामान्य बाधाएं

1. जैविक खाद जैसे पशु और हरी खाद की अनुपलब्धता।
2. हरी खाद की फसल उगाने में कठिनाई।
3. जैव उर्वरकों की अनुपलब्धता।
4. मृदा परीक्षण सुविधाओं की अनुपलब्धता।
5. रासायनिक उर्वरकों की उच्च लागत।
6. पानी की अनुपलब्धता।
7. ज्ञान की कमी और खराब सलाहकार सेवाएं।
8. उन्नत बीजों की अनुपलब्धता।

लाभ

- पोषक तत्व आसानी से और जल्दी से पौधों को उपलब्ध होते हैं।
- मिट्टी की सेहत बनाए रखने में मदद करते हैं।
- सूक्ष्म पोषक तत्वों की आपूर्ति करते हैं।
- सभी स्रोत, खेत पर ही उत्पन्न किए जा सकते हैं।
- स्थान की विशिष्ट समस्याओं की मांगों को पूरा करने के लिए छोटी इकाइयों में विविधता लाने का लाभ है।
- खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता और शेल्फ जीवन को बढ़ाया जाता है।
- मिट्टी की भौतिक, रासायनिक और जैविक कार्यप्रणाली को बनाए रखता है।
- कार्बन जब्तीकरण को बढ़ावा देकर मिट्टी, पानी और पारिस्थितिकी तंत्र की गिरावट को कम करता है।

हानियाँ

- उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी के पीएच में असंतुलन हो जाता है।
- अधिकांश रासायनिक उर्वरक, उच्च ऊर्जा खपत वाले होते हैं।
- रासायनिक उर्वरक पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।
- कार्बनिक स्रोत प्रकृति में थोक हैं, पोषक तत्व सामग्री में कम हैं।

- जैविक खादों में उच्च C:N अनुपात होता है और ठीक से नहीं बनाये जाने से अस्थायी कमी हो सकती है।

निष्कर्ष और सिफारिशें

उपज वृद्धि में गिरावट के लिए पोषक तत्वों और मिट्टी की उर्वरता का कुप्रबंधन है।पोषक तत्वों और मिट्टी की उर्वरता का एकीकृत प्रबंधन, निरंतर तकनीकी परिवर्तन, किसान भागीदारी, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और अनुकूल नीति वातावरण के साथ, इन वृद्धि को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण घटक हैं। सरकारों को अपने ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं में प्रतिनिधि क्षेत्रों में पोषक चक्र और पोषक तत्वों के संतुलन पर डेटा इकट्ठा करने के लिए पर्याप्त परीक्षण और निगरानी प्रणाली स्थापित करनी चाहिए। इसके अलावा, सरकारों को आधुनिक जलवायु किस्मों और कठोर जलवायु वातावरण के लिए उपयुक्त एकीकृत पोषक तत्वों के विकास के लिए अनुसंधान का समर्थन करना चाहिए। जैविक नाइट्रोजन निर्धारण पर शोध को बढ़ावा दिया जाना चाहिए ताकि मिट्टी में नाइट्रोजन की उपलब्धता और कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि हो। पर्यावरण को प्रदूषित किए बिना उच्च पैदावार के लिए पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने के लिए अकार्बनिक उर्वरकों की लक्षित, पर्याप्त और संतुलित मात्रा में उपयोग करना आवश्यक होगा।साथ ही, माध्यमिक पोषक तत्वों और सूक्ष्म पोषक तत्वों, जैव उर्वरकों और मिट्टी संरक्षण प्रथाओं की उपलब्धता और उपयोग में सुधार के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। पौधे के पोषक तत्वों की निरंतर कमी से अपरिवर्तनीय गिरावट और मिट्टी की बांझपन हो सकती है जब तक कि मिट्टी के प्रबंधन में सुधार के लिए कदम नहीं उठाए जाते हैं। इन कदमों में (1) व्यापक मृदा परीक्षण, (2) किसानों और शोधकर्ताओं के बीच घनिष्ठ सहयोग और समन्वय से सूचनाओं का आदान–प्रदान करना और उन प्रौद्योगिकियों का प्रसार करना है जो कि मिट्टी की उर्वरता और कृषि स्थिरता आवश्यकताओं के साथ–साथ तत्काल किसान अस्तित्व की जरूरतों को ध्यान में रखते हैं, (3) मृदा से संबंधित मुद्दों पर ध्यान देने के लिए विस्तार सेवाओं और गैर–सरकारी संगठनों को प्रोत्साहन, (4) जैविक पोषक तत्वों के अधिक उत्पादक उपयोग को बढ़ावा देना, और (5) मृदा नमी और पोषक तत्वों के संरक्षण के लिएआवरण विधियों को बढ़ावा देना।

धान की फसल में जस्ते का महत्व व प्रबंधन

महेश चन्द मीना, अबिर डे एवं ब्रह्म स्वरूप द्विवेदी
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

पौधों में जैव रासायनिक प्रक्रियाओं के लिए जस्ता अनिवार्य है। जस्ता जड़ों द्वारा अवशोषित होता है और वहीं से पौधों के विभिन्न अंगों के आवश्यकतानुसार स्थानांतरित होता है। जस्ते की कमी मुख्तयः लवणग्रस्त, कंकरीली, पी एच मान 8.5 से अधिक तथा विनिमेय सोडियम प्रतिशत 15 से अधिक (क्षारीय½ मृदाओं में पायी जाती है। देश के 19 राज्यों के मृदा नमूनों में 8 से 86 प्रतिशत तक में जस्ते की कमी पायी गई ह৷ मृदा नमूनों में जस्ते की कमी पूरे देश में औसतन 36.5 प्रतिशत है। धान की फसल में जस्ते की कमी से 'खैरा रोग' उत्पन होता है।

खैरा रोग का विस्तार

जस्ते की कमी से होने वाला यह रोग हरित क्रांति के प्रारंभिक दशकों में अविभाजित उत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तराखंड) के तराई क्षेत्र में एक समस्या बनकर उभरा था। तब से आज तक यह (खैरा रोग) भारत के अन्य प्रदेशों जैसे आन्ध्र प्रदेश, पंजाब एवं बंगाल आदि में धान की मुख्य बीमारी के रूप में एक बडी समस्या बना हुआ है।

जस्ते की कमी के मुख्य कारण

1. मृदा में जस्ते की उपलब्धता में कमी होनाः खाद्यान्न (अनाज) फसलों की उच्च पैदावार वाली किस्मों की पोषक तत्वीय आवश्यकता अधिक होती है। उनकी सघन खेती से मृदाओं में पोषक तत्वों का लगातार दोहन होता है जिसके फलस्वरुप उनकी उपलब्धता में कमी होती जाती है।
2. सिंचाई जल एवं नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाष का अधिक मात्रा में प्रयोग करने पर जस्ते का अधिक उद्ग्रहण होता है। फलतः मृदा में जस्ते की कमी होती है जिसका फसलों पर सीधा असर दिखाई देता है।
3. मृदाओं में जीवांष पदार्थ के स्तर में गिरावट।
4. धान की रोपित प्रजातियों (जैसे आई आर–26) का जस्ते के प्रति संवेदनशील होना।
5. हल्के गठन वाली मृदाऐं जैसे रतीली व दोमट मृदायें।
6. लवणीय व क्षाणीय मृदाएं।
7. मृदाओं में उपलब्ध फॉस्फोरस की अधिकता अथवा फॉस्फोरस उर्वरक के अधिक मात्रा में प्रयोग से जस्ते का स्थिरीकरण होना (फॉस्फोरस–प्रेरित जस्ते की कमी)।
8. लम्बे समय तक जल भराव की स्थिति।
9. ठण्डा एवं नमीयुक्त वातावरण।
10. कैल्शियम व मैग्नीशियम के कार्बोनेट व बाईकार्बोनेट लवणों की अधिक मात्रा।
11. मृदा में चूने का अत्याधिक प्रयोग अथवा चुनही मृदाओं में जलमग्नता (अवायुवीय दशा) के बाद लोहा, कैल्शियम, मैग्नीशियम तांबा, मैग्नीज और फॉस्फोरस का अधिक उपलब्धता के कारण जस्ते का उदग्रहण बाधित होना।
12. प्रदूषित जल से सिंचाई वाले क्षेत्रों में सिंचाई जल में फॉस्फोरस का अधिक मात्रा का होना।
13. धान–युक्त बहुफसली (सघन) फसल प्रणालियों का समावेष।

धान में जस्ते की कमी के लक्षण

1. धान से पौधों की ऊपरी पूर्ण विकसित पत्तियों पर धूल जैसे भूरे धब्बे, रोपाई के 2 से 3 सप्ताह में दिखाई देते हैं। वृद्धि असमान होती है तथा पौधे बौने होते हैं।
2. इसमें पत्तियों पर हल्के पीले रंग के धब्बे बनते हैं। जो बाद में कत्थई हो जाते हैं।
3. पौधों की रोपाई के दो से तीन सप्ताह और ब्यॉत के बाद पुरानी पत्तियों का रंग हल्का होना शुरू हो जाता है।
4. पुरानी पत्तियों की शिरायें सूखने लगती हैं।
5. जस्ता की आवश्यकता पूरी न होने के कारण धान का पौधा बौना रह जाता है, तथा ब्यॉत भी कम होती है।

6. जस्ता की कमी से से प्रभावित पौधे की जड़ें भी कत्थई रंग की हो जाती हैं, जो प्रायः पूर्णरुप से विकसित नहीं हो पाती हैं।

7. इस प्रकार के लक्षणों को 'खैरा रोग' कहा जाता है, जो जस्ते की कमी से होता है।

जस्ते की कमी का धान की उपज पर प्रभाव

फसल की पैदावार पर होने वाला प्रभाव वास्तव में जस्ते की कमी की तीव्रता पर निर्भर करता है। आमतौर पर उपज में 60 से 80% प्रतिशत तक गिरावट देखी गई है। इसके अलावा उत्पाद की गुणवता पर भी जस्ते की कमी का कुप्रभाव पडता है। जस्ता की अत्यधिक कमी से धान की फसल प्रभावित होकर पूरी तरह खत्म भी हो सकती है।

धान की फसल में जस्ते का प्रबंधन

- जस्ते के प्रति अपेक्षाकृत उच्च दक्षता वाली धान की प्रजातियों का चयन करना चाहिए।
- बुवाई पूर्व धान के भिगोए हुए बीज को अथवा रोपाई से पूर्व पौध (नर्सरी) की जड़ों को जिंक उर्वरक (जिंक सल्फेट½ के 2–4 प्रतिशत जलीय घोल में डुबोना चहिए।
- गोबर की खाद तथा अन्य जैविक खादों का प्रयोग करना चाहिए।
- धान–आधारित त्रि–फसली फसल चक्र वाली भूमि में समय–समय पर जल निकास की व्यवस्था करें।
- उच्च पी एच मान (8 से अधिक) वाले जल से सिंचाई नहीं करना चाहिए। अपरिहार्य स्थिति में ऐसे सिंचाई–जल का परीक्षण कराने के बाद संस्तुतियों के अनुसार जिप्सम के साथ ही इसका प्रयोग करें।

जस्ते की कमी (खैरा रोग) का प्रबंधन

धान की फसल में जस्ता की कमी के लक्षण दिखाई देने पर अविलंब जस्ते का प्रयोग करना चाहिए। निम्नलिखित उपाय अलग–अलग अथवा समग्र रूप से प्रभावी है, परन्तु कमी के लक्षण दिखने पर इनको तत्काल क्रियान्वित करना चाहिए।

- पहले भी धान के खेत में यह रोग दिखाई दिया हो तब नर्सरी में जिंक सल्फेट (0:5 प्रतिशत) एवं बुझे चूने (0:25 प्रतिशत) का जलीय घोल का बुवाई के 10 तथा 20 दिन बाद दो बार छिड़काव करें।
- खड़ी फसल में कमी के लक्षण दिखाई देने पर 5.0 किलोग्राम जिंक सल्फेट व 2.5 किलोग्राम बुझा चूना 600–800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे. की दर से छिड़काव करना चाहिए। पर्णीय छिड़काव खड़ी फसल में जस्ते की कमी के आकस्मिक उपचार हेतु किया जाता है।
- जिन मृदाओं में जस्ते की उपलब्धता कम हो अर्थात उपलब्ध जस्ता (0.6 मि.ग्रा/कि.ग्रा से कम हो) अथवा कई वर्षों से लगातार धान की फसल ली जा रही हो, वहाँ जिंक सल्फेट उर्वरक का उचित दर से बीज बोने अथवा रोपाई से पहले मृदा में प्रयोग करना चाहिए। जस्ते की कमी से बचाव हेतु 5–10 कि.ग्रा जस्ता प्रति हेक्टेयर की दर से जिंक ऑक्साइड अथवा जिंक क्लोराइड द्वारा भी दिया जा सकता है। सामान्यतः, जस्ते के उवर्रक के तौर पर जिंक सल्फेट का इस्तेमाल किया जाता है। मृदापरीक्षण की संस्तुति के आधार पर बुआई/रोपाई से पूर्व जिंक सल्फेट का इस्तेमाल करना उचित रहता है। क्योंकि इससे खड़ी फसल में जस्ते की कमी प्रकट होने की संभावना काफी कम हो जाती है और प्रायः पर्णीय छिड़काव की आवश्यकता नहीं पड़ती।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600

पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा
मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित
फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,